

जीवन विद्या : एक परिचय

मा नव बंधुओं ! मैं अपने में से ही स्वेच्छापूर्वक विगत वाङ्मयों को समझा हूँ । इसमें और किसी का दबाव नहीं रहा । समझने के बाद मेरी एक कामना हुई । कैसी होनी चाहिए यह धरती ? उसके लिए मैं अपने में ही एक उद्गार पाया वह है “भूमि स्वर्ग हो, मनुष्य देवता हो ! धर्म सफल हो, नित्य शुभ हो ।”

**भूमि स्वर्गताम् यातु,
मनुष्यो यातु देवताम् ।
धर्मो सफलताम् यातु,
नित्यम् यातु शुभोदयम् ॥**

ये कैसे उद्गमित हुआ इसकी पृष्ठभूमि मैं आपके सम्मुख रखना चाहता हूँ । यह शरीर यात्रा एक परिश्रमी, सेवाकारी, धर्मपरायण, आर्यश्रेय परिवार में प्रारंभ हुई । यह तो आप सबको विदित है कि हर मानव संतान किसी ना किसी माँ की कोख से पैदा होता है; किसी ना किसी धर्म को मानने वाला होता ही है; किसी ना किसी राज्य संविधान को स्वीकारा ही रहता है । परंपरा में प्राप्त शिक्षा में अर्पित होता ही है और शिक्षाविदों के अनुसार चलकर देखता है । यह आज तक की परंपरा की बात रही । उसी विधि से मैं भी जहां से शुरू किया, जिस परिवार में शुरू किया इसी सबसे गुजरने लगा । इसके साथ रूढ़िगत परंपरा की बातें इसके साथ बैठो, इनके साथ नहीं बैठो, ये करो, ये ना करो ये सब बातें जबसे शुरूआत की है इन रूढ़ियों से हमारा मन भरा नहीं । ये बचपन की ही बात हैं । पहले-पहले ये

मानव बंधुओं ! मैं अपने में से ही स्वेच्छापूर्वक विगत वाङ्मयों को समझा हूँ । इसमें और किसी का दबाव नहीं रहा । समझने के बाद मेरी एक कामना हुई । कैसी होनी चाहिए यह धरती ? उसके लिए मैं अपने में ही एक उद्गार पाया वह है “भूमि स्वर्ग हो, मनुष्य देवता हो ! धर्म सफल हो, नित्य शुभ हो ।”

बचपन की बात है (बच्चा है) ऐसा बुजुर्ग लोग भी सोचते रहे । कुछ दिनों बाद वे लोग भी बदलने लगे । दृष्टियाँ, मुद्रा, भंगिमा, तयौरी सब बदलने लगे । मुझे लगा हमारे बुजुर्ग मुझसे प्रसन्न नहीं है । दुःख का पहला कारण हमारा ये बना । किन्तु प्रसन्न भी कैसे किया जाए भाई ! जैसा ये कहे वैसा ही करें तो भी हम कसौटी लगाने लगे । सब दिन सब समय ये प्रसन्न नहीं रहते हैं ? ऐसा मुझको दिखा है । मुख्य बात यहाँ से है । जब मुझको ये लगने लगा कि हमारे बुजुर्ग हमको ऐसा करो वैसा नहीं करो कहते हैं वैसा खुद करते हैं या नहीं करते है किन्तु सब दिन सब समय प्रसन्न नहीं है । जबकि उनसे ज्यादा आर्यश्रेय, वाङ्मय के विद्वानों को कहीं पाया नहीं जा सकता । ऐसे सब सिद्धियाँ होने के बाद हम हमारे में ये निर्णय कर लिया, किसी भी विधि से रूढ़ियों को तो मानना ही नहीं । यह एक प्रकार से प्रतिज्ञा होने लगी और दूसरा कारण जुड़ गया कि हमारे बुजुर्ग हमको समझा नहीं पाते थे । कुल मिलाकर जितनी बार वे विफल होते गये उतनी ही हमारी अहंता बढ़ती गयी । ये हमारा अहंता बढ़ने की बात और रूढ़ियों से ना जुड़ने की बात यह सब एक साथ ही चल दिया । इस क्रम से चलकर हम क्या करते ? अब बड़े बुजुर्ग यह दावा करने लगे कि यह वेद को समझा नहीं है, वेदांत को समझा नहीं है, शास्त्र को समझा नहीं है । यह अपने आप में स्वयंभू के रूप में हर रूढ़ियों को हर बात को, नकारता है यह कहाँ तक ठीक है ? इस मुद्दे पर चिंता करने लगे । यह हमारे लिए दूसरे दुख का कारण बना । मैं अब क्या करता ? अब कोई दूसरा रास्ता नहीं रहा तो मैं आर्ष ग्रन्थों के अनुसार वेदान्त को समझा । जिन्हें वे

जब मुझको ये लगने लगा कि हमारे बुजुर्ग हमको ऐसा करो वैसा नहीं करो कहते हैं वैसा खुद करते हैं या नहीं करते है किन्तु सब दिन सब समय प्रसन्न नहीं है । जबकि उनसे ज्यादा आर्यश्रेय, वाङ्मय के विद्वानों को कहीं पाया नहीं जा सकता ।

सर्वोपरि मानते थे ।

पहला भूमि है वेदान्त, अर्थात् माने गये वैदिक विचार का कर्म । वैदिक विचार के अनुसार कर्म उस चीज को मानते हैं जिससे स्वर्ग मिलता है बाकी सबको और कुछ कहते हैं । उपासना उसको कहते हैं जिसमें इन्द्र या अन्य देवी देवता बनना हो, इसके लिए जो उपक्रम है उसे वेद-उपासना कहते हैं । तीसरे शीर्ष भाग में यह कहते हैं कि ज्ञान ही सर्वोपरि है । ज्ञान क्या है ? पूछा तो ब्रह्मज्ञान । ब्रह्म क्या चीज है ? पूछा तो तुम समझोगे नहीं । समझोगे नहीं तो हम कैसे पार पायेगे ? बुजुर्गों ने जो कहा है, 'करो, ना करो' इसी विधि से पार पायेगे । क्या करें ? क्या होगा ? यह तुमको समाधि में मिलेगा । समाधि से सारे प्रश्नों का उत्तर मिलता है ये आश्वासन हमको बुजुर्गों से मिला । इस आधार पर मैंने अपने मन को सुदृढ़ किया कि कुछ भी हो एक बार समाधि की स्थिति को देखना ही है और कोई बात बनती ही नहीं है । ना हमारा कोई दावा का मतलब है, ना करने का भी कोई मतलब नहीं है, करो का भी कोई मतलब ना ही है । एक बार हमें अपने

प्रश्नों का उत्तर मिलना चाहिए । वेदान्त को भली प्रकार सुनने के बाद पहले तो ये प्रश्न बना :- बंधन और मोक्ष क्या है मायावश हम बंधन में रहते हैं ऐसा वे कहते हैं । मोक्ष माने आत्मा का ब्रह्म में विलय होने को कहते हैं । आत्मा कहाँ से आया ? तो बोलते हैं - जीवों के हृदय में ब्रह्म स्वयं आत्मा के रूप में निवास करता है । जब जीव मुक्त होने के लिए अर्थात् आवागमन से यानि स्वर्ग-नरक से मुक्त होने के लिए आत्मा का ब्रह्म में विलय होना ही है, तो यह ब्रह्म जीवों के

**ज्ञान क्या है ? पूछा,
तो ब्रह्मज्ञान । ब्रह्म क्या
चीज है ? पूछा तो तुम
समझोगे नहीं । समझोगे नहीं
तो हम कैसे पार पायेगे ?
बुजुर्गों ने जो कहा है,
'करो, ना करो' इसी विधि
से पार पायेगे । क्या करें ?
क्या होगा ? यह तुमको
समाधि में मिलेगा । समाधि
से सारे प्रश्नों का उत्तर
मिलता है ये आश्वासन
हमको बुजुर्गों से मिला ।**

हृदय में आत्मा के रूप में क्यों बैठ गया ? पहले जब जीव हुआ था उस समय में उनमें कोई आत्मा नहीं था फिर ब्रह्म को उसके अंदर घुसने की क्या जरूरत थी ? ऐसा हमारा वितण्डावाद जैसा हुआ । क्योंकि हम बुजुर्गों की ध्वनि से ध्वनि नहीं मिलाया इसलिये हमें वितण्डावादी नाम दिया । हमने कहा आप लोग जो समझते हैं वह ठीक है किन्तु इसका उत्तर तो आप प्रस्तुत करोगे । परन्तु इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिला । उसके बाद यही कहा गया कि इसका उत्तर भी तुम्हें समाधि में ही मिलेगा । अब क्या करें ? समाधि के लिये तत्पर होने के लिये हम शनैः-शनैः तैयार हुये । हमारा मन धीरे-धीरे बनता रहा । इस तरह सन् 1944 से शुरूआत हुई और सन् 1946 तक हम समाधि के लिये तत्पर हो गये । उस समय और एक स्थिति बनी देश में स्वराज्य आयेगा इसकी संभावना बलवती हुई । सन् 1947 की बात है जैसा कि हम लोग आशा करते थे सत्ता का हस्तान्तरण हुआ । उसमें भी बहुत बड़े चिंतनशील थे, बुजुर्ग थे, विचारशील थे उनकी बातों को सुनते रहे और उनमें भी व्यतिरेक आई सफलता के दिन तक । उसमें भी हम पीड़ित हुये । उसके बाद और एक आशा लगी अब हमारा एक संविधान बनेगा । उसमें शायद सही मनुष्य के मूल्यांकन की व्यवस्था रहेगी । मैं अपने तरफ से, स्वयं स्फूर्त विधि से सोचता रहा कि संविधान से कहीं न कहीं मार्गदर्शन मिलेगा ।

संविधान की जब रचना हुई तब इस संबंध में अखबारों में जो लेखा-जोखा आता रहा उसको मैं ध्यान से सुनता रहा और समझने की कोशिश करता रहा । सन् 1950 तक की सारी बातें सुनकर हमारे मन में आया कि इस संविधान के तले सही आदमी (मनुष्य) का मूल्यांकन नहीं हो सकता । इसका आधार यह बना कि सही मनुष्य का कोई

**अब क्या करें ?
समाधि के लिये तत्पर होने के
लिये हम शनैः-शनैः तैयार हुये ।
हमारा मन धीरे-धीरे बनता
रहा । इस तरह सन् 1944 से
शुरूआत हुई और सन् 1946
तक हम समाधि के लिये
तत्पर हो गये । उस समय
और एक स्थिति बनी देश में
स्वराज्य आयेगा इसकी
संभावना बलवती हुई ।**

चरित्र ही इसमें व्याख्यायित नहीं है जिसको हम राष्ट्रीय चरित्र कह सकें। अब क्या किया जाये ? पहले से संकट था ही, वेदांत और समाधि, समाधि में ही सब उत्तर मिलना है। इस प्रश्न को भी उसी से जोड़ लिया। समाधि में ही इसका भी उत्तर मिलेगा जिसमें किसी बड़े बुजुर्ग के साथ या विद्वानों के साथ तर्क करने की आवश्यकता नहीं है। मिलता होगा तो सबका जवाब मिलेगा, नहीं मिलता है तो यह शरीर यात्रा बोध के लिए अर्पित है ऐसा हम अपने में निर्णय लिया। इसके लिए एक व्यक्ति और तैयार हो गयी वह है मेरी धर्मपत्नी। हम अमरकंटक को एक ऐसी स्थली, प्राण-स्थली, नर्मदा जी का उद्गम स्थली है ये सब सुनते ही थे। उस पावन विचार के आधार पर क्यों न वहीं जाकर यह अंतिम प्रयत्न किया जाए ऐसा सोचकर हम अमरकंटक आ गये। वहाँ आकर हम आगम तंत्रोपासना विधि से साधना करने लगे। इस विधि में समाधि का एक तरीका बताया गया है, जिसमें सारे देवी देवताओं को अपने ही शरीर के हर भाग में देखने की बात है। अपनी ही कल्पना से देखने की बात है। उनकी पूजा पाठ करने की बात है। ऐसे ही अपने शरीर के अंग-प्रत्यंगों में जो कुछ भी कल्पना करते हैं ये देवता है वो देवता है इस क्रिया का नाम दिया है “न्यास”। इसके मूल में यह सूत्र दिया है ‘देवोभूत्वा देवान् यजमेत’ अर्थात् तुम स्वयं देवरूप होकर देवताओं की अराधना करो। ये बात मुझको बतायी गयी थी। उसके साथ उसी प्रकार से ईमानदारी से करने के लिए हम तत्पर हुए। उसमें जैसा बन पड़ता था वैसा करता रहा। करते-करते एक दिन ऐसा आया कि हम देवी देवताओं से, के सान्निध्य से मुक्त हो गये। “मैं हूँ” इसका बोध था। हमारे पास और कोई विचार नहीं था।

ऐसा सोचकर हम अमरकंटक आ गये। वहाँ आकर हम आगम तंत्रोपासना विधि से साधना करने लगे। इस विधि में समाधि का एक तरीका बताया गया है, जिसमें सारे देवी देवताओं को अपने ही शरीर के हर भाग में देखने की बात है। अपने ही कल्पना से देखने की बात है।

हमको कोई चीज पाना है इसका कोई विचार नहीं था, हमारे पास कोई चीज है यह भी विचार नहीं था, हमको कुछ करना है यह भी विचार नहीं था। एक नयी बात, छोटी सी बात यह घटना हुई। इस घटना होने के कुछ घंटों तक यही स्थिति रही। उसके बाद जैसे ही हमें शरीर का बोध हुआ, समय का बोध हुआ। तब हमको पता चला कि इन तीनों का हमें बोध नहीं रहा था। हमारे पास विचार ही नहीं था। ऐसा मुझको मुझमें विश्वास हुआ। ये होने के बाद मैं सोचने लगा कि मुझे समाधि की स्थिति आ गयी। उस समाधि की स्थिति को हर दिन दोहराता रहा। कई घंटों तक दोहराता रहा और प्रतीक्षा करता रहा हमारे प्रश्नों का उत्तर अब मिलेगा, अब मिलेगा किन्तु वर्षों प्रतीक्षा करने के बाद भी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिला। यह दूसरी विफलता आई। अब क्या करें? वेदांत को समझने से उत्तर नहीं मिला, समाधि के बाद उत्तर नहीं मिला, हमारे परिवार में ही जो सर्वोपरि विद्वान है वो भी कुछ बता नहीं पाते हैं? अब कहाँ जायें? अब किसी पर आरोप लगाने की जगह ही नहीं रहा इस शिकंजे में हम अपने ढंग से रहे, कराहते रहे। रहते-रहते एक दिन ऐसा लगा कि हम वाकई में समाधि की बात सुना था, हमको यह विश्वास भी हो गया कि समाधि हो गया, किन्तु समाधि यही है इसको हम कैसे दूसरों को बता पायेंगे। इसको हम सुदृढ़ कैसे माने प्रमाण क्या माने? इसमें बताने की कोई चीज ही नहीं है तो हम प्रमाण कैसे प्रस्तुत करेंगे। यह संकट गहराया तो हमको समाधि हुआ कि नहीं इसको आजमाने के लिए हमने संयम नाम की एक क्रिया किया। ये भी सलाह पूर्वजों से मिली थी। ये पातंजली योगसूत्र में उल्लेखित है उसमें लिखा है ‘धारणा ध्यान समाधि त्रयमेकत्रत्वात् संयमः।’ इसको कोई

हमको यह विश्वास भी हो गया कि समाधि हो गया, किन्तु समाधि यही है इसको हम कैसे दूसरों को बता पायेंगे। इसको हम सुदृढ़ कैसे माने प्रमाण क्या माने? इसमें बताने की कोई चीज ही नहीं है तो हम प्रमाण कैसे प्रस्तुत करेंगे। यह संकट गहराया तो हमको समाधि हुआ कि नहीं इसको आजमाने के लिए हमने संयम नाम की एक क्रिया किया।

भी मेधावी व्यक्ति पढ़कर देख सकता है। जो संयम के बारे में कुछ भी लिखा है हमको स्वीकार नहीं हुआ। अपने ढंग से हम समाधि का एक चित्र बनाया, तरीका बनाया। उस तरीके से हम संयम किया। संयम करने के फलस्वरूप तो जर्ज़र-जर्ज़र अस्तित्व हमको, हमारे सामने दिखा, दिखना शुरू हुआ। देखने का मतलब समझना है।

एक परमाणु से लेकर इतनी बड़ी धरती तक क्या-क्या प्रक्रिया से गुजरी उसको हम क्रमवत् देखा है। विधिवत् देखा है, उसको आपको बोध करा देते हैं। ये स्थिति मुझमें स्थापित हुई। इसी के साथ परमाणुओं के कतार में एक 'जीवन परमाणु' को देखा। वो 'जीवन परमाणु' मुझमें आपमें, आज पैदा हुए आदमी में, शरीर छोड़ा हुआ स्थिति में, ये सब समान रहते हैं। ये बोध हुआ शरीर छोड़कर भी जीवन रहता और शरीर के साथ भी रहता है। शरीर के साथ क्यों रहता है। उसमें पूछा जाए तो आगे प्रसंगवश मैं बताऊंगा। इस जगह में हम देखा कि शरीर के माध्यम से 'जीवन' अपने को प्रमाणित करना चाहता है। इतना ही सूत्र है इसका। यह जीवन क्या प्रमाणित करना चाहता है? इसका उत्तर ये मिला; जीवन पहले जीना चाहता है उसके बाद तो जीने के साथ-साथ सुखी होना चाहता है। सुखी होने के साथ-साथ प्रमाणित होना चाहता है।

ये तीन स्थितियां हैं। इसमें से जो पहली स्थिति है : जीना चाहते हैं वह जीव कोटि में ही पूरा हो जाता है। जैसे ही वो सुखी होना चाहते हैं और प्रमाणित होना चाहते हैं यह मानव कोटि में ही पूरा हो सकता है और कहीं पूरा होता नहीं। इसको मैंने भली प्रकार

संयम करने के फलस्वरूप तो जर्ज़र-जर्ज़र अस्तित्व हमको, हमारे सामने दिखा, दिखना शुरू हुआ। एक परमाणु से लेकर इतनी बड़ी धरती तक क्या-क्या प्रक्रिया से गुजरी उसको हम क्रमवत् देखा है। विधिवत् देखा है, उसको आपको बोध करा देते हैं। ये स्थिति मुझमें स्थापित हुई। इसी के साथ परमाणुओं के कतार में एक 'जीवन परमाणु' को देखा।

से देखा है। ये बहुत संतुष्टि की जगह मुझे मिली। उसके बाद उसी के चलते सुखी होने के लिए जो सूत्र रहा - 'व्यवस्था में जीना' ये भी देख लिया।

जितना भी जड़ संसार है जिसको हम पदार्थविस्था, प्राणावस्था कहते हैं वह ठोस, तरल और विरल रूप है और जितनी भी प्राणकोशाओं से बनी हुई रचनाएं हैं उनके मूल में बहुत सारे रस-रसायनों का अनुभव हुआ है। मानव जाति को और भी जो करना है, करते रहेंगे। तो इनसे रचित सभी वस्तुओं का जो संयोग से ही कुल मिलाकर के शरीर रचना की बात देखी। भौतिक रासायनिक वस्तुओं से ही ये जीव-जन्तु और मनुष्य शरीर भी बनता है। तो इन जीव-जन्तु और मनुष्य शरीरों में जो अंतर मैंने देखा कि मनुष्य शरीर रचना में ही मेधस तंत्र पूर्ण समृद्ध हो पाता है। समृद्ध होने का मतलब यह है कि जीवन बहुमुखी विधि से अपने को प्रमाणित करने योग्य मेधस तंत्र बना रहता है। इसको मैंने सटीक देखा है।

ये सब देखने के बाद मुझे लगा जीव कोटि अपनी व्यवस्था में है, व्याख्यायित है, अपने में परिभाषित है। वैसे ही मानव भी अपने में परिभाषित है और व्याख्यायित है और इस ढंग से जीने पर आदमी को सुखी होना बन जाता है ये भी हमको पता लगा। इसी के साथ-साथ वे उत्तर भी मिल गये। वाकई में मोक्ष क्या है? बंधन क्या है? जिस बात के लिए हम चले थे उसका उत्तर इसी जगह में मिल गया। कैसा मिल गया? जीवन हर मनुष्य शरीर को संचालित करता है; क्या प्रमाणित करना है? पहले बताया सुख को प्रमाणित करना है। सुख को प्रमाणित करने के लिए क्या होना पड़ता है? समझदार होना

ये सब देखने के बाद मुझे लगा जीव कोटि अपनी व्यवस्था में है, व्याख्यायित है, अपने में परिभाषित है। वैसे ही मानव भी अपने में परिभाषित है और व्याख्यायित है और इस ढंग से जीने पर आदमी को सुखी होना बन जाता है ये भी हमको पता लगा।

पड़ता है। मनुष्य समझकर व्यवस्था को प्रमाणित करेगा और सुख को प्रमाणित करेगा और दूसरी विधि से कर नहीं पायेगा। मैं स्वयं साधना करता रहा सब लोग कहते रहे बड़े नियम से, बड़े संयम से, बड़ा सटीक रहता है। आदमी सब उमड़-उमड़ करके हमको देखने आते थे किन्तु हम गवाही दे रहा हूँ हमारी मानसिकता में कोई भी संयम नहीं रहा। जब तक हम समाधिस्थ नहीं हुए तब तक हममें कोई मानसिक संयम नहीं रहा। हमारे में इतना ही बात रही कि हमें साधना करना है और कोई ऊटपटांग कार्य हम नहीं कर सकते। किन्तु ऊटपटांग बात हमारे मन में ना उपजे ऐसा कोई बात नहीं थी। इस आधार पर मैं दावे के साथ कह सकता हूँ जब तक आदमी समाधिस्थ नहीं हो जाता तब तक ऊटपटांग विचार ना आए ऐसा कोई कायदा अस्तित्व में नहीं है। मनुष्य स्वयं नहीं चाहता कि ऊटपटांग बातें हो, मन में आवें; साधना करने वाला तो कोई चाहता ही नहीं। मैं भी नहीं चाहता रहा फिर भी होता रहा। यही संकट सभी साधकों के सामने आता है। इसे साधक जब तक झेल पाता, झेल पाता है जब झेल नहीं पाता, झेल नहीं पाता है यही मैं कह सकता हूँ यही इसकी समीक्षा है।

अब जब इस मुद्दे का उत्तर मिल गया क्या चीज है बंधन और मोक्ष। बंधन है नासमझी, भ्रम। नासमझी क्या है हम जीव जानवरों जैसा जीएं। जानवर के क्रियाकलापों को मॉडल मान लें। इसी को प्रमाण मान लें उसके अनुरूप यदि हम जीने के लिए प्रवृत्त होते हैं तो स्वाभाविक है हमारे लिए भ्रम है। नासमझी से जीने के लिए परंपरा हमको मजबूर करती है। उसका प्रमाण है कि कामोन्मादी मनोविज्ञान, भोगोन्मादी समाजशास्त्र और लाभोन्मादी अर्थशास्त्र। इसके बीच में

मैं दावे के साथ कह सकता हूँ जब तक आदमी समाधिस्थ नहीं हो जाता तब तक ऊटपटांग विचार ना आए ऐसा कोई कायदा अस्तित्व में नहीं है। मनुष्य स्वयं नहीं चाहता कि ऊटपटांग बातें हो, मन में आवें; साधना करने वाला तो कोई चाहता ही नहीं।

चलता हुआ आदमी अपने बच्चे को बहुत अच्छा बने, श्रेष्ठ बने, संस्कारी बने, सुखद बने, सुशील बने ऐसा आशीर्वाद करते हैं। अब इसका-उसका तालमेल कहाँ है। बच्चों को हम जो सिखाते हैं, पढ़ाते हैं उसका और जो आशीर्ष देते हैं उसका तालमेल कहाँ है।

दूसरा प्रश्न राष्ट्रीय चरित्र उसका भी उत्तर मिल गया। क्या मिल गया? अस्तित्व में हर एक अपने त्व सहित व्यवस्था में है। समग्र व्यवस्था में भागीदारी करता है। ये चीज मानव में भी आने के लिए रास्ता मिल गया। मानव की परिभाषा मिल गयी। “मानवता”, जागृत मानव का कार्यव्यवहार का स्वरूप है। उस कार्यव्यवहार को हम सूत्रित करते हैं व्याख्यायित करते हैं यही समाजशास्त्र या संविधान कहलाता है। मानव के आचरण को बोध कराना ही समाजशास्त्र का मूल वस्तु है ये हमको समझ में आ गया। इस ढंग से दोनों मुद्दों पर हमको उत्तर मिल गया कि मानवीय आचार संहिता होगी संविधान से। संविधान के रूप में हम राष्ट्रीय चरित्र को पहचान सकते हैं। इसके बाद हम भ्रममुक्त हो जाएं तो मनुष्य की तरह जिया जाए यही भ्रम से मुक्ति है, मोक्ष है। ना बर्फ को पत्थर बनाना, ना पत्थर को पानी बनाना, ना किसी को आशीर्वाद देना है ना कोई चमत्कार करना है ना कोई सिद्धि दिखानी है। अस्तित्व में न कोई सिद्धि है न कोई चमत्कार है इसको हम सटीकता से देखा है। शाप और आशीर्वाद के बीच कराहता हुआ आदमी आज भी करोड़ों-करोड़ों है। तो इसका एक ही उत्तर है जिस क्षण हम आप जागृति की दिशा में एक भी कदम बढ़ाते हैं उसी मुहूर्त में सम्पूर्ण शाप, ताप, पाप तीनों ध्वस्त हो जाता है। इनका कोई कलंक नहीं

इसके बाद हम भ्रम-मुक्त हो जाएं तो मनुष्य की तरह जिया जाए यही भ्रम से मुक्ति है, मोक्ष है। ना बर्फ को पत्थर बनाना, ना पत्थर को पानी बनाना, ना किसी को आशीर्वाद देना है ना कोई चमत्कार करना है ना कोई सिद्धि दिखानी है। अस्तित्व में न कोई सिद्धि है न कोई चमत्कार है इसको हम सटीक देखा है।

रह जाता। वह कैसे इसका उत्तर गणितीय विधि से इस प्रकार दिया। जैसे हम गणित को हजार बार गलत किए रहते हैं किन्तु जब सही करना आ जाता है तो जीवन भर के लिए सही हो जाता है। जब तक गलती करते रहते हैं तब तक एक बार जो गलती करते हैं दुबारा वो गलती करते ही नहीं, दूसरी गलती ही करते हैं। उसको भी हम प्रमाण के रूप में देख सकते हैं यदि करोड़ बच्चों के लिए गणित का प्रश्न दिया जाए; सही उत्तर देते हैं तो सबका एक ही होता है। गलत होते हैं तो करोड़ होता है। हर सामान्य व्यक्ति भी इसका सर्वेक्षण कर सकता है। इस ढंग से हम एक और सूत्र पा गये। **हम मानव सही में एक हैं गलती में अनेक।**

जब अस्तित्व को देखा; महिमा सम्पन्न एक सूत्र हमको मिला। अस्तित्व में दो ही प्रजाति की वस्तुएँ हैं। पहली एक-एक के रूप में जिन्हें गिन सकते हैं जिसको प्रकृति कहा जा सकता है। दूसरा जो सर्वत्र फैला हुआ है इसको हर व्यक्ति एक क्षण में समझ सकता है। प्रत्येक एक-एक वस्तु इस दूसरी वस्तु में भीगा है, घिरा है, डूबा है। इसे व्यापक कह सकते हैं। एक-एक वस्तु (इकाईयाँ) दो प्रजाति की है - एक जड़, दूसरा चैतन्य। चैतन्य वस्तु का मतलब है जीव कोटि - मनुष्य कोटि और जड़ वस्तु का मतलब है - पदार्थविस्था, प्राणावस्था। इसमें सभी खनिज, मिट्टी, धातु तथा प्राण कोशाओं से बनने, बिगड़ने वाली वस्तु हैं। ये जितने भी वस्तुएँ हैं व्यापक वस्तु में भीगी ही है, घिरी ही है, और डूबी ही है इसको मैंने सटीकता से देखा है। व्यापक वस्तु से एक-एक वस्तु अलग होने का अस्तित्व में कोई प्रावधान नहीं है। अस्तित्व में जिसका प्रावधान नहीं है मनुष्य उसे पैदा नहीं कर सकता।

अस्तित्व में दो ही प्रजाति की वस्तुएँ हैं। पहली एक-एक के रूप में जिन्हें गिन सकते हैं जिसको प्रकृति कहा जा सकता है। दूसरा बहुत बड़ा राशि है, जो सर्वत्र फैला हुआ है इसको हर व्यक्ति एक क्षण में समझ सकता है। प्रत्येक एक-एक वस्तु इस दूसरी वस्तु में भीगा है, घिरा है, डूबा है। इसे व्यापक कह सकते हैं।

अस्तित्व में जो भी प्रावधान है उसकी उपयोगिता को छोड़कर दुरुपयोगिता की ओर मनुष्य कुछ भी उपलब्धि करता है तो सिवाए बर्बादी के और कुछ हाथ लगता नहीं है। जैसे- युद्ध के लिए हमने बहुत सारी चीज उपयोग किया इससे धरती और मानव को बरबाद करने के अलावा दूसरा हम कुछ नहीं कर पाए। शायद यह सारे वैज्ञानिकों को धीरे-धीरे समझ में आ रहा है। यदि यह पहले समझ में आ जाता तो मानव समृद्ध व सुखी हो सकते थे। अनेक घाट-घाट के बाद नदी समुद्र में आती है, शायद नियति यही रही हो। पहले रहस्यमयी याने आदर्शवाद के बीच आदमी को आना पड़ा, स्वीकारना पड़ा इससे जो राहत मिला वह मनुष्य को पर्याप्त नहीं हुआ। पुनः भौतिकवाद के शिकंजे में आ गये। इसमें भी जो राहत मिला वह सुख, समृद्धि के अर्थ में पर्याप्त नहीं हुआ। आज जो दर्द है यह उसकी बात है। दोनों जगह से हम पूर्ण राहत नहीं पाये, स्वाभाविक है तीसरी सीढ़ी की जरूरत है।

इस ढंग से जो उत्तर पाए बंधन और मोक्ष उसका उत्तर यह बना -

“मनुष्य समझदार होता है तो बंधन से मुक्ति पा जाता है”। अब समझदार हो कैसे? इसके लिए जब देखी हुई बात को मैंने देखा कि मुझमें क्या भ्रम है? ‘मुझमें’ मैं शोध किया, ‘मुझमें’ मैं जाँचा तब पता लगा कि हमारे पास बंधन का कारण कुछ भी नहीं दिखता; तो यही स्थिति क्यों न सबमें पैदा की जाए। सबमें पैदा करने पर कैसा लगेगा? तब जैसा आपको पहले सुनाया था। भूमि स्वर्ग हो जाएगी, मनुष्य देवता हो जाएगा, सभी धर्म सफल हो जाएगा, नित्य शुभ ही शुभ होगा। परंपरा के रूप में नित्य शुभ होगा।

बंधन और मोक्ष उसका उत्तर यह बना - “मनुष्य समझदार होता है तो बंधन से मुक्ति पा जाता है”। अब समझदार हो कैसे? इसके लिए जब देखी हुई बात को मैंने देखा कि मुझमें क्या भ्रम है? ‘मुझमें’ मैं शोध किया, ‘मुझमें’ मैं जाँचा तब पता लगा कि हमारे पास बंधन का कारण कुछ भी नहीं दिखता; तो यही स्थिति क्यों न सबमें पैदा की जाए।

इसमें अपने को हम फिर जांचने लगे क्या हम यह सब संप्रेषित कर पायेंगे ? क्या इसकी लोगों को जरूरत है या नहीं ?

ये सब उसके बाद शुरू हुआ । तो मुख्य मुद्दा जिससे मैं अपने में आश्वस्त हुआ कि संविधान में मानवीय आचरण रूपी मानवीय आचार संहिता को समावेश कर सकते हैं । जिससे मानवीय राष्ट्रीय चरित्र प्रमाणित होगा । इस जगह में हम निश्चित हूँ । मैं स्वयं पारंगत हूँ और प्रमाण भी हूँ । **‘अस्तित्व’ मुझको समझ में आया है आपको समझा देंगे और ‘जीवन’ मुझे समझ में आया है और आपको समझा देंगे । ‘मानवीयता पूर्ण आचरण’ मुझको समझ में आया है आपको समझा देंगे ।** यदि ये तीनों तथ्य समझ में आता है, माने हम समझदार हो गए । समझदार होने पर क्या हो गए ? समझदार होने से बंधन मुक्त हो गए । कैसा बंधन ? भ्रम रूपी बंधन से मुक्त हो गये । पहले बुजुर्गों ने क्या बताया आवागमन से मुक्ति होगी । आवागमन से मुक्ति का कोई ताल्लुकात नहीं है । न कोई गया है न कोई आएगा । जो है सब अस्तित्व में है ।

मरने के बाद भी जीवन अस्तित्व में है और शरीर चलाते समय भी जीवन अस्तित्व में है । कोयला जलाने के बाद भी रहता है विभिन्न स्वरूपों में । ये भौतिक-रसायन शास्त्री इस बात को समझे भी होंगे । नहीं समझें होंगे तो सबको समझना ही होगा, मजबूरी है । इस ढंग से ‘समझदारी’ समझ में आती है । मूलतः ‘वस्तु’ का नाश नहीं होता । उसी आधार पर मैंने मंगल कामना की है कि भूमि यदि सख्त

तो मुख्य मुद्दा जिससे मैं अपने में आश्वस्त हुआ कि संविधान में मानवीय आचरण रूपी मानवीय आचार संहिता को समावेश कर सकते हैं । जिससे मानवीय राष्ट्रीय चरित्र प्रमाणित होगा । एक तो इस जगह में हम निश्चित हूँ । मैं स्वयं पारंगत हूँ और प्रमाण भी हूँ ।

रहेगी, मानव यदि व्यवस्था में जी सकता है यही सार्वभौमिक नित्य मंगल होने का आधार है । इस विधि से जो मंगल कामना मेरे मन में उपजी उसके समर्थन में पूरे अस्तित्व में मानवीयता पूर्ण आचरण ही एक प्रधान मुद्दा है । इससे बड़ा उपकार यह होगा धरती को बिना घायल किये, बिना पेट फाड़े, बिना बर्बाद किए मानव चिरकाल तक इस धरती पर रह सकता है इसकी भी विधि इसी समझदारी से आती है ।

आज तक के बीते इतिहास में मानव कुछ भी अप्रत्याशित घटना घटित किया है वो सारी घटनाएं नासमझी से ही घटित हुई है । अभी धरती को जितना घायल करने की बात हुई, धरती का पेट फाड़ा गया, धरती को बुखार उत्पन्न किया, धरती की सतह पर अनेक प्रकार की विकृतियाँ तैयार की । उसके फलस्वरूप नदी, नाला ये सब बर्बाद हो गये, हवा पानी को बर्बाद कर दिए और इससे जो आदमी त्रस्त हो रहे हैं ये हम आप सबको विदित ही है । जब तक धरती कष्टग्रस्त रहेगी तब तक धरती में रहने वाले

समस्त वनस्पति, समस्त जीव, और मनुष्य सभी कष्टग्रस्त होंगे ही । धरती को घायल करके आदमी स्वस्थ रहे, सुखी रहे इसकी परिकल्पना कितने अच्छे लोग किए होंगे आप ही सोच लीजिएगा । अब इससे आगे की शुभ बात यह निकलती है कि यदि हम धरती को तंग करना बंद कर देते हैं तो आश्वस्त होने का मुद्दा है कि इस धरती की सतह में जो सम्पदाएं हैं वे अपने आप में इस धरती के आदमियों के जीने के लिए पूरी पड़ती है । गलती, अपराध, द्रोह, विद्रोह ये सब चीज मनुष्य की नासमझी का दोष है । ये समझदारी की उपज नहीं है इसकी

पहले बुजुर्गों ने क्या बताया आवागमन से मुक्ति होगी । आवागमन से मुक्ति का कोई ताल्लुकात नहीं है । न कोई गया है न कोई आएगा । जो है सब अस्तित्व में है । मरने के बाद भी जीवन अस्तित्व में है और शरीर चलाते समय भी जीवन अस्तित्व में है । कोयला जलाने के बाद भी रहता है विभिन्न स्वरूपों में ।

गवाही यही है मनुष्य असंतुलित, धरती असंतुलित, नदी-नाला, पहाड़, जंगल सब असंतुलित है। हम मानव विज्ञान युग में यह सब कर चुके हैं उसके बाद भी डींग हाँकने में बाज नहीं आए और सोचते हैं हम विज्ञान से ही अच्छा ठोस पायेंगे जबकि धरती से ये मानव जाति कूच होने की जगह पर आ गयी है। इस पर ध्यान देने की बात है। जब भी इस समस्या से बचना चाहेंगे आदमी को समझदार होना ही होगा। दूसरा कोई ठौर नहीं है। नासमझी से अपराधों का रोकथाम होता नहीं चाहे राष्ट्रीय संविधान विधि से ही हो, अपराध तो अपराध ही है।

अभी धरती की छाती पर जितने भी राष्ट्र निवास करते हैं सभी राष्ट्रों का अपना एक संविधान रहता है। सभी राष्ट्रों के संविधान में तीन मुख्य मुद्दे हैं और एक वचन है, महावाक्य है, वो है 'शक्ति केन्द्रित शासन'। शक्ति केन्द्रित शासन की जो व्याख्या है उसमें गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना, युद्ध को युद्ध से रोकना यही तीन कर्म है। इन तीनों कर्मों से कहीं भी ऐसा नहीं दिखता है कि हम अपराध से मुक्ति पा गए। ये तीनों चीजें अपने आप में हर दिन, हर माह, हर वर्ष, हर शताब्दी और मजबूत होती जाती है। युद्ध की मजबूती, अपराधों की विपुलता, गलतियों की कतार ये ही इतिहास में भरी हुई हैं। पन्ने रंगे हुए हैं। ये गवाही है। अगर हम इनका समाधान खोजते हैं तो इसके मूल में पाते हैं इन सभी परिस्थितियों को बनाने वाला केवल आदमी ही है। दूसरा महत्वपूर्ण कारण है 'धर्म संविधान'। सम्पूर्ण धरती के जितने भी धर्म संविधान हैं उसमें यह माना गया है आदमी जो मूलतः पापी, अज्ञानी, स्वार्थी होता है। जबकि वास्तविकता इससे भिन्न होती है। तो पापी को तारने के लिए, अज्ञानी को ज्ञानी बनाने के लिए, स्वार्थी को परमार्थी

इस धरती की सतह में जो सम्पदाएं हैं वे अपने आप में इस धरती के आदमियों के जीने के लिए पूरी पड़ती है। गलती, अपराध, द्रोह, विद्रोह ये सब चीज मनुष्य की नासमझी का दोष है। ये समझदारी की उपज नहीं है इसकी गवाही यही है मनुष्य असंतुलित, धरती असंतुलित, नदी-नाला, पहाड़, जंगल सब असंतुलित है।

होती जाती है। युद्ध की मजबूती, अपराधों की विपुलता, गलतियों की कतार ये ही इतिहास में भरी हुई हैं। पन्ने रंगे हुए हैं। ये गवाही है। अगर हम इनका समाधान खोजते हैं तो इसके मूल में पाते हैं इन सभी परिस्थितियों को बनाने वाला केवल आदमी ही है। दूसरा महत्वपूर्ण कारण है 'धर्म संविधान'। सम्पूर्ण धरती के जितने भी धर्म संविधान हैं उसमें यह माना गया है आदमी जो मूलतः पापी, अज्ञानी, स्वार्थी होता है। जबकि वास्तविकता इससे भिन्न होती है। तो पापी को तारने के लिए, अज्ञानी को ज्ञानी बनाने के लिए, स्वार्थी को परमार्थी

बनाने के लिए सभी धर्म संविधान अपने-अपने ढंग की युक्तियाँ, चरित्र, कर्तव्य, दायित्व और कर्मकाण्ड आदि कुछ भी बनाये हैं। यह भी एक बहुत स्पष्ट तथ्य है। इनका परिणाम क्या हुआ ? अभी तक कोई अज्ञानी ज्ञानी हो गया ऐसा मानव जाति ने पहचाना नहीं। स्वार्थी परमार्थी हो गया ये भी प्रमाण मिला नहीं। पापी पाप से मुक्त हो गया यह भी प्रमाण नहीं मिला।

मैं आपको इसके पहले कुछ बताया था। समाधि पर्यन्त तक साधना है। साधना काल में, मनुष्य में वैचारिक समाधानित होना बना ही नहीं रहता, मन उद्वेलित रहता ही है, क्योंकि मनुष्य समस्या से पीड़ित होकर ही तो समाधि की ओर दौड़ता है। समाधि तक प्रयत्न करते हुए ही आदमी की ऊँचाई दिखाई पड़ती है। साधनाकाल में मनुष्य को तमाम प्रकार की ऊटपटांग बात आती है समाधि के बाद उनका शमन होता है।

समाधि के बाद मनुष्य को कुछ करने की इच्छा होती ही नहीं, कुछ पाने की इच्छा होती ही नहीं, कुछ रखने की इच्छा होती ही नहीं ये भी बात देखी गयी है। तो हमको कैसे इच्छा हुई ये सब तैयार करने के लिए। मैं आपको पहले ही विनय कर चुका हूँ कि मैं मुक्ति के लिए, स्वर्ग के लिए तो समाधि किया नहीं था मैं मेरे प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए समाधि के लिए प्रवृत्त हुआ था। समाधि में प्रश्नों का उत्तर मिला नहीं तो मुझे समाधि हुई या नहीं इस बात को जांचना शुरू किया। इसी जांच में ये सब चीजें समझ में आ गयीं। मानव के पुण्यवश, मानव के भविष्यवश, मानव के सर्वशुभवश, सर्वकल्याणवश ये बात निकल के आ गई। ये किताबों से नहीं निकला है। ये सच्चाई

मैं आपको पहले ही विनय कर चुका हूँ कि मैं मुक्ति के लिए, स्वर्ग के लिए तो समाधि किया नहीं था मैं मेरे प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए समाधि के लिए प्रवृत्त हुआ था। समाधि में प्रश्नों का उत्तर मिला नहीं तो मुझे समाधि हुई या नहीं इस बात को जांचना शुरू किया। इसी जांच में ये सब चीजें समझ में आ गयीं।

है। बुजुर्गों ने हमको इतना ही मार्गदर्शन किया था कि समाधि से ही उत्तर मिलेगा। समाधि मुझको हुआ या नहीं, इसको प्रमाणित करने के लिए हमने संयम किया और उसी के बलबूते ये बातें निकल आई। मानव की समझदारी तरंगवत है। पहले जंगलयुग में, शिलायुग में और धातु युग में जैसा मानव जिया ये सब इतिहास में लिखा हुआ है। जैसे ही राजयुग आया तो काफी लोगों ने राहत पाया। राजा जानमाल की रक्षा करेगा जबकि वो चीज अभी तक हुआ नहीं। जान माल की रक्षा हुई नहीं है अमन चैन तो बहुत दूर है।

हर परिवार, हर समुदाय जान-माल की रक्षा और अमन चैन के लिए चिंतित रहता ही है। इसी तरह आदर्शवादी सीढ़ी लगी है उससे लोगों को जो कुछ भी राहत मिली और कुछ काल के बाद वह भी पर्याप्त नहीं हुआ। पुनः जब अपर्याप्त हुआ तो स्वाभाविक था पुनः विचार किया। विचार के रूप में विज्ञानवाद आया। इसमें तर्कसम्मत रूपी खूबी के कारण लोगों को यह स्वीकृत हुआ। पहले उपदेशवाद में तर्क की कोई गुंजाइश नहीं थी। आदर्शवाद में करो, ना करो वाली बात में न मानने वाले लोगों को पापी करार देते रहे जितना प्रताड़ित करना है वो भी करते रहे। ये सब इतिहास में लिखा है। तर्कसंगत और तर्क के लिए आमंत्रण होने के कारण मानव ने विज्ञानवाद को स्वीकार किया।

दूसरा स्वर्ग की जो कल्पना थी, जिस सुख की कामना थी वो विज्ञान से प्राप्त सुविधाओं में लोगों को मिलने लगा। उसको भी खूब चख लिया आदमी ने। इसमें भी विज्ञान की उपलब्धियाँ मनुष्य के लिए पर्याप्त नहीं हुई। पुनः झंझट में फंसने लगा मनुष्य। इस तरह

मैं मुक्ति के लिए, स्वर्ग के लिए तो समाधि किया नहीं था मैं मेरे प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए समाधि के लिए प्रवृत्त हुआ; समाधि में प्रश्नों का उत्तर मिला नहीं तो मुझे समाधि हुई या नहीं इस बात को जांचना शुरू किया। इसी जांच में ये सब चीजें समझ में आ गयी।

मनुष्य झूलता ही रहता है भक्ति-विरक्ति और संग्रह सुविधा के बीच। संग्रह-सुविधा से जब आदमी त्रस्त हो जाता है तब भक्ति-विरक्ति की ओर दौड़ता है और जब भक्ति-विरक्ति से पैर ठंडे पड़ जाते हैं तो संग्रह-सुविधा की ओर दौड़ता है। और दोनों सुनने में अच्छा लगता है किन्तु अच्छा लगना और अच्छा होने में कितनी दूरी है। हर व्यक्ति सोच सकता है। अच्छा लगने मात्र से अच्छा होता नहीं है। जैसे ठंडा पानी, पीना अच्छा लगता है परंतु इससे अच्छा ही होता है ऐसा कोई नियम नहीं है। ठंडा पानी पीने से कोई रोगी हो सकता है, किसी को खाँसी हो सकती है। अतः ठंडा पानी अच्छा लगना या ठंडा पानी अच्छा न लगना दोनों सार्वभौम नहीं हो सकते हैं।

विज्ञानवाद के कारण हम एक अस्थिरता, अनिश्चितता की ओर चले जा रहे हैं और विज्ञानियों ने मनुष्य को एक यंत्र के रूप में व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। वे अभी तक सफल नहीं हो पाये हैं। जो वैज्ञानिक मनुष्य को यंत्र के रूप में व्याख्यायित करता है वह स्वयं इस व्याख्या से असंतुष्ट रहता है। आजकल मनुष्य की यांत्रिक कार्यविधि को समझना एक बड़ा मुद्दा बना है। इसी आधार पर मनुष्य के व्यवहार में गति (स्पीड), कार्य में गति, विचार में गति आ पायेगी ऐसा सोचते हैं। जबकि आदमी इस फ्रेम में आता नहीं। विज्ञान ने यांत्रिकता को ही सटीक माना है इसको आदमी समझ सकता है, झेल सकता है। आदर्शवादियों ने संवेदनशीलता की वकालत की। संवेदनशीलता को आदमी समझ नहीं सकता, झेल नहीं सकता। दोनों वादों में दूरियाँ बरकरार हैं। इस तरह एक के बाद एक समस्या

स्वर्ग की जो कल्पना थी, जिस सुख की कामना थी वह विज्ञान से प्राप्त सुविधाओं में लोगों को मिलने लगा। उसको भी खूब चख लिया आदमी ने। इसमें भी विज्ञान की उपलब्धियाँ मनुष्य के लिए पर्याप्त नहीं हुई। पुनः झंझट में फंसने लगा मनुष्य। इस तरह मनुष्य झूलता ही रहता है भक्ति-विरक्ति और संग्रह सुविधा के बीच।

में मनुष्य जकड़ता गया। समस्या के साथ ही शरीर यात्रा को समाप्त करते हैं। कुल मिलाकर हमारी इस ढंग से स्थिति बनी है। अभी जो मैं मानव कुल के समक्ष प्रस्ताव रख रहा हूँ वह मानव जाति का ही पुण्य है ऐसी मेरी स्वीकृति है। मैंने जो परिश्रम किया उसका मैं, मूल्यांकन करता हूँ वह इतने बड़े फल (जितना हम पा गये) के योग्य नहीं है। जैसे अमरुद के पेड़ में एक टन का फल लग जाये तो पेड़ टूट जायेगा ऐसा देखा जा सकता है। उसी भांति हमारे साथ ऐसी ही घटना घट गयी है। हमारे परिश्रम से अधिक यह बात है। इस परिश्रम को कौन दोहराता है यह बात इसमें मुख्य है। मनुष्य में परिश्रम से अधिक फल को कौन दोहराता है उसे हमने सटीकता से देखा है। जीवन ऐसे फल को लेकर चलने में समर्थ है, कैसे? जीवन को हम अक्षय बल, अक्षय शक्ति के रूप में देखा है। आपको भी अध्ययन कराते हैं। आपकी जिज्ञासा हुई तो आप भी समझ सकते हैं। हमारा विश्वास है कि आपको समझने की जरूरत है। इसलिये आप समझेंगे ही। यह बात समझ में आती है कि जीवन, शरीर के माध्यम से जो कुछ भी तय करता है वह शरीर की आवश्यकता से अधिक हो ही जाता है। यह सहज प्रक्रिया है। मैंने जीवन को देखा है; मानव को जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में देखा है। अभी तक मानव जीवन को और अस्तित्व को अध्ययन विधि से समझाने में असमर्थ थे। विज्ञान जहाँ भी अस्तित्व बोध कराने गया हर जगह अस्थिरता, अनिश्चयता को दिखाता रहा और लाभोन्माद, भोगोन्माद, कामोन्माद के लिए, संघर्ष करने के लिए विचार देता रहा। हम मानव इसे स्वीकारते रहे। स्वीकार करके जब हम उसको भोग कर गुजरे वह हमारे लिये तृप्ति का आधार नहीं बना। इस तरह से

विज्ञान ने यांत्रिकता को ही सटीक माना है इसको आदमी समझ सकता है, झेल सकता है। आदर्शवादियों ने संवेदनशीलता की वकालत की। संवेदनशीलता को आदमी समझ नहीं सकता। झेल नहीं सकता। दोनों वाद में दूरियां बरकरार है। इस तरह एक के बाद एक समस्या में मनुष्य जकड़ता गया।

हम अंतरविरोधी होकर भी जीते रहे। अभी आपके सम्मुख जो प्रस्ताव प्रस्तुत है इसको समझना ही है। मैं जैसे जाँचता हूँ अपने में, वैसे ही आपको भी जाँचना ही है और जाँच कर जब आप तृप्त होते हैं तब दूसरों को समझाने के लिए अपने को अर्पित करना होता ही है। जब हम दूसरों को समझा पाये तब हमारी समझ का प्रमाण मिलता है यह एक कसौटी है समझदार होने का। मुझको जो अनुभव हुआ वह यह है कि समझदारी में हम सह-अस्तित्व को देखा है। सह-अस्तित्व में मानव अपने परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर समृद्धि का अनुभव कर सकता है। व्यवहार के हर मूल मुद्दे में मनुष्य की समझदारी समाधान के रूप में ही ध्रुवीकृत होती है। इन तीनों बातों को हमने देखा है जिसका अध्ययन कराने के क्रम में, प्रमाणित करने के क्रम में हम दूर-दूर तक फैल जाते हैं जब कि शरीर की लम्बाई-चौड़ाई निश्चित ही रहती है। मानव के लिए जो प्रस्ताव प्रस्तुत कर रहे हैं वह स्वयं में एक व्यक्ति की लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई से बहुत दूर-दूर तक फैलने वाली चीजें हैं। इसी प्रकार हर मनुष्य में वह योग्यता है हर मनुष्य में वह अरमान है, हर मनुष्य में समझदारी के अर्थ में उत्साह जगाया जा सकता है यह इस प्रस्ताव का अर्थ है।

विज्ञान जहाँ भी अस्तित्व बोध कराने गया हर जगह अस्थिरता, अनिश्चयता को दिखाता रहा और लाभोन्माद, भोगोन्माद, कामोन्माद के लिए, संघर्ष करने के लिए विचार देता रहा। हम मानव इसे स्वीकारते रहे। स्वीकार करके जब हम उसको भोग कर गुजरे वह हमारे लिये तृप्ति का आधार नहीं बना।

विज्ञान अपने में एक सीढ़ी है, उससे पहले की सीढ़ी आदर्शवाद है, उससे पहले की सीढ़ी ग्राम कबीला संसार है, उससे पहली सीढ़ी जंगलों में भटकता हुआ आदमी, शिलायुग है। इस ढंग से सीढ़ी दर सीढ़ी हम यहाँ तक पहुँचे। इस उपकार को अपने को स्वीकारना चाहिए और इसके लिए कृतज्ञ हैं। इस पृष्ठभूमि का सामान्य उपक्रम आपको बताया। सार संक्षेप में परंपरा ने जो उच्चकोटि की

चीज हमको प्रस्तुत की उसमें हम संतुष्ट नहीं हुए। फलस्वरूप हम अपने को एक जिम्मेदार व्यक्ति माना। मेरे प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने की जिम्मेदारी मेरी है ऐसा स्वीकार किया। फलस्वरूप प्रयत्न किया और कोई बात के लिए हम प्रयत्न नहीं किये। इस वैचारिक प्रयत्न में हम अंत में यह पाया कि सभी मनुष्य सुखी हो सकता है, धर्म सफल हो सकता है धरती स्वर्ग हो सकती है, मनुष्य देवता हो सकता है इसलिये हमारी इच्छा हुई, उत्साह बना कि इस बात को मानव कुल के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए उसी प्रयत्न में हम चल रहे हैं।

जब मैं अस्तित्व, जीवन और मानवीयतापूर्ण आचरण को भली प्रकार से समझा उसके तुरंत बाद ही मुझमें एक ऐसी स्थिति बनी जिसको अभी आपके सम्मुख रखने जा रहा हूँ। समझदारी के बाद **अपने आप में विश्वास** बना। इसके लिए कोई प्रयास या बहुत परिश्रम किया ऐसा कुछ नहीं। विश्वास को मैंने हर आयामों में जांचना भी शुरू किया। इसी भांति **श्रेष्ठता का सम्मान** करना भी बन गया। श्रेष्ठता का मूल्यांकन करना बन गया फलस्वरूप सम्मान करना बनता ही है। जिसका हम मूल्यांकन नहीं करते उसका सम्मान कर नहीं पायेंगे। तीसरा मुद्दा ये बना जो कुछ भी हमारी समझदारी थी उसके अनुसार हमारे व्यक्तित्व को पूरा का पूरा एक सुविधाजनक विधि से हम झेलने योग्य बन गये। मुझे कहीं भी ऐसी कोई दिक्कत महसूस नहीं हुई कि प्रतिभा के अनुसार, अस्तित्व सहज, जीवन सहज विधि से मैं जी नहीं पाऊंगा। इसका नाम दिया **प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन**। इसमें हम सही सच्चा उतर गए। चौथी स्थिति आई **व्यवहार में सामाजिक** हो गया। सामाजिक होने पर तृप्ति मुझको अपने आप में मिलने लगी। इसका लाभ यह हुआ कि हमको

जब मैं अस्तित्व, जीवन और मानवीयतापूर्ण आचरण को भली प्रकार से समझा उसके तुरंत बाद ही मुझमें एक ऐसी स्थिति बनी जिसको अभी आपके सम्मुख रखने जा रहा हूँ। समझदारी के बाद अपने आप में विश्वास बना। इसके लिए कोई प्रयास या बहुत परिश्रम किया ऐसा कुछ नहीं।

संसार के प्रति कोई शिकायत शेष नहीं रही। अब मैं कितना सार्थक करता हूँ इस बात की जाँच हर दम करता रहता हूँ। मैं जितने संबंधों में जीता हूँ अपने दायित्व कर्तव्यों के साथ सार्थक जीता हूँ। पाँचवी स्थिति आई है **समृद्धि**। वैसे तो मैं परिश्रमी परिवार में पैदा हुआ, परिश्रम करना, सेवा करना हम जानते थे। किन्तु समृद्धि का मतलब हमको समझ में नहीं आता था। अब समृद्धि का मतलब समझ में आ गया। हमारे परिवार के लिए जितनी जरूरत है उससे ज्यादा हम उत्पादन कर लेते हैं इसलिए हम समृद्धि का अनुभव करते हैं। इस ढंग से बहुत सारी बढ़िया चीजें हमारे हाथ लग गयी इसका नाम दिया **स्वायत्तता**। मैं अपने में **स्वायत्त** हुआ इसलिए आप भी हो सकते हैं। जब हम स्वायत्त हुए तो हमारे बाद इस संसार को हम अर्पित कर सकते हैं, समझा सकते हैं, बोल सकते हैं, फलस्वरूप उसको एक वाङ्मय दस्तावेज रूप देना शुरू किया। पहला दस्तावेज हुआ - मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद। मध्यस्थ दर्शन को चार अध्यायों चार खंडों में ध्रुवीकृत किया।

पहला अध्याय का नाम दिया है :- **मानव व्यवहार दर्शन**। दूसरा अध्याय का नाम है :- **मानव कर्म दर्शन**। तीसरा अध्याय का नाम है :- **अभ्यास दर्शन**। चौथे अध्याय का नाम है :- **अनुभव दर्शन**।

इस ढंग से चार अध्याय में पूरा दर्शन को लिखा। इनका मूल तत्व है मध्यस्थ दर्शन। अस्तित्व में सम, विषम और मध्यस्थ शक्तियाँ अर्थात् गतियाँ है। इसके अपने-अपने ढंग के परिणाम है। जिसमें से मध्यस्थ बल और शक्ति वैभवित होना ही मानव परंपरा का अद्भुत ध्येय है। इससे मैं भी चमत्कृत हुआ। अभी तक जितने भी वैज्ञानिक,

सामाजिक होने पर तृप्ति मुझको अपने आप में मिलने लगी। इसका लाभ यह हुआ कि हमको संसार के प्रति कोई शिकायत शेष नहीं रही। अब मैं कितना सार्थक करता हूँ इस बात की जाँच हर दम करता रहता हूँ। मैं जितने संबंधों में जीता हूँ अपने दायित्व कर्तव्यों के साथ सार्थक जीता हूँ।

ज्ञानी, अज्ञानी जिनको भी इसकी गंध लगी है वो चमत्कृत होते ही हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार सम, विषम शक्तियों को मानने की जगह में है मध्यस्थ शक्ति, मध्यस्थ बल को कोई प्रयोजन के रूप में समझना अभी तक बना नहीं है। मैं सोचता हूँ यह बहुत बड़ी भारी कमी और खामी रह गयी। इसलिए पुनर्विचार करने के लिए जरूरत आ गयी तो मध्यस्थ बल, मध्यस्थ शक्ति, मध्यस्थ सत्ता, मध्यस्थ जीवन इस चारों बातों को चार तथ्यों को समझने समझाने का कार्य किया है इसी का नाम है - “मध्यस्थ दर्शन”।

सह अस्तित्ववाद को जब हम स्पष्ट करने के लिए तीन स्वरूप में तीन शीर्षक में तैयार हुआ। पहला - **समाधानात्मक भौतिकवाद**। इसका ध्रुव बिन्दु है :- **पूरा का पूरा भौतिकता और रासायनिकता ये अपने में ‘त्व’ सहित व्यवस्था के रूप में प्रकाशित है। समग्र व्यवस्था में ये भागीदारी करते ही हैं। चैतन्य प्रकृति के साथ भी पूरक हैं। जड़ प्रकृति, जड़ प्रकृति के साथ भी भागीदारी करते हैं।** इसको स्पष्ट करने की कोशिश की है। अभी मानव के पास जो भी वाद हैं वो संघर्षात्मक अर्थात् द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। **जबकि अस्तित्व सहज में कोई झगड़ा नहीं है, विद्रोह नहीं है, छीना, झपटी नहीं है, एक दूसरे के लिए पूरक हैं, एक उत्सव है, एक खुशियाली है, निरंतर विकास है,** इस बात को समझाने की कोशिश की है। वाङ्मय तो वाङ्मय ही है। किन्तु आदमी, आदमी से ही समझेगा मेरे अनुसार। वाङ्मय में तो कोशिश ही हो सकती है। इसमें मूल मुद्दा ये है **विज्ञान सम्मत विवेक; विवेक सम्मत विज्ञान** विधि से तर्क को प्रस्तुत किया है। विवेक का तात्पर्य है प्रयोजन की पहचान। प्रयोजन

अस्तित्व में सम, विषम और मध्यस्थ शक्तियाँ अर्थात् गतियाँ है। इसके अपने-अपने ढंग के परिणाम है। जिसमें से मध्यस्थ बल और शक्ति वैभवित होना ही मानव परंपरा का अद्भुत ध्येय है। इससे मैं भी चमत्कृत हुआ। अभी तक जितने भी वैज्ञानिक, ज्ञानी, अज्ञानी जिनको भी इसका गंध लगा है वो चमत्कृत होते ही हैं।

यदि समझ में आता है, उसकी पहचान हो जाती है तो उसका विश्लेषण हम करेंगे। प्रयोजन समझ में नहीं आता है तो हम विश्लेषण करते जाएं क्या बनता जाता है वह आपको भी समझ में आता है। विज्ञान ने आज आदमी को जहाँ ले जाकर बैठाया है, या फंसाया है वो आप स्वयं मूल्यांकन कर सकते हैं। तो समाधानात्मक भौतिकवाद के अनुसार अस्तित्व में जो भी पदार्थ है भौतिक और रासायनिक रूप में है ये मनुष्य को व्यवस्था में जीने के लिए प्रेरक है और समग्र इकाईयां एक दूसरे के लिए पूरक हैं, वैभव के लिए सहायक है और आगे के विकास के लिए एक दूसरे से अंतर्संबंध से जुड़े हैं। इस ढंग से समाधान बताया गया है। सहअस्तित्ववाद का दूसरा प्रबंध का नाम दिया :- **“व्यवहारात्मक जनवाद”** मानव जो है अस्तित्व में है। व्यवहार पूर्वक ही संतुष्ट होने की जगह है। व्यवहार ‘मानव’ मानव के साथ करता है। मानव का व्यवहार मानवीयता पूर्ण आचरण के रूप में स्पष्ट हो जाता है और इसी को स्पष्ट करने की कोशिश की है।

उसके बाद तीसरा एक प्रबंध लिखा है **“अनुभवात्मक अध्यात्मवाद”**। अभी तक अध्यात्म जिसको संसार मानता रहा उसको समझाने में असमर्थ रहा। अध्यात्म को हम आसानी से चंद क्षणों में ही समझ सकते हैं। आप हमारे बीच जो रिक्तता है, दिखाई देता है, उसी को विस्तार और शून्य कुछ भी कह सकते हैं। ये रिक्तता जो आप व हमारे बीच हैं वैसे ही इस धरती और दूसरी धरती के बीच में है। एक सौर व्यूह दूसरा सौर व्यूह के बीच ऐसी ही रिक्तता है। एक आकाश गंगा दूसरी आकाश गंगा के बीच भी वैसा ही है। तो ये विस्तार सब जगह एक सा है। इतना ज्ञान होता है कि ये वस्तु व्यापक है। व्यापक वस्तु में समस्त एक-एक वस्तु

समाधानात्मक भौतिकवाद के अनुसार अस्तित्व में जो भी पदार्थ है भौतिक और रासायनिक रूप में है ये मनुष्य को व्यवस्था में जीने के लिए प्रेरक है और समग्र इकाईयां एक दूसरे के लिए पूरक हैं, वैभव के लिए सहायक है और आगे के विकास के लिए एक दूसरे से अंतर्संबंध से जुड़े हैं।

(इकाईयाँ) डूबी, भीगी, घिरी है। इसी का अनुभव आदमी को सबसे पहले होता है। उसके बाद आदमी को स्वयं के होने का अनुभव होता है। आपके हमारे बीच यह व्यापक न हो तो आपका अनुभव मुझको हो ही नहीं सकता। इसलिए सर्वप्रथम जो भी अनुभव होता है व्यापक में ही होता है। इसी को स्पष्ट करने की कोशिश की है। अस्तित्व को जरूरत के बारे में भी प्रकाश डालने की कोशिश की है। अस्तित्व को समझे बिना अस्तित्व के ही एक भाग के रूप में जो मानव जाति है वह अपने को कैसे समझेगा। इसलिए अस्तित्व को समझना बहुत जरूरी है। व्यापक वस्तु में ही संपूर्ण एक-एक वस्तु है यह स्वयं सहअस्तित्व की गवाही है। तो अस्तित्व सहज सह अस्तित्व को हम यदि भुलावा देते हैं सिवाए संकट के, दुख के और कुछ होता ही नहीं है। अभी तक हम जितने भी द्रोह, विद्रोह, शोषण, युद्ध किए हैं ये सब सह-अस्तित्ववाद के विरोधी है। ये सब करने के बाद हम सही चीज को पाने की इच्छा किए, उम्मीद किए। हमारा उम्मीद पूरा हुआ नहीं और जैसा किए वैसी ही घटनाएं सामने आते रहीं। हम कभी हंसते भी रहे कभी रोते भी रहे। जैसे कोई परिवार, समुदाय दूसरे किसी को मार डालता है और बड़े खुश होते हैं कि हमारे शत्रु को मार दिया। सरकार भी, देश भी ऐसे ही सोचता है। अब क्या किया जाए? धर्मगद्दी भी ऐसे ही बनता है। अब किसकी शरण में जाए मनुष्य। इस तरह धर्मगद्दी, राजगद्दी, शिक्षागद्दी सभी जगह भ्रम ही भ्रम मिलता है न कोई दिशा है न कोई प्रयोजन। अब हम कहाँ जायें? क्या करें? ये परेशानियाँ थी। ये सब परेशानियाँ जागृति के पूर्व मुझमें भी थी। जागृति उपरान्त हम बहुत अच्छी ढंग से इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए तैयार हुए कि इस पूरी चीज को मानव के

व्यापक वस्तु में समस्त एक-एक वस्तु (इकाईयाँ) डूबी, भीगी, घिरी है। इसी का अनुभव आदमी को सबसे पहले होता है। उसके बाद आदमी को स्वयं के होने का अनुभव होता है। आपके हमारे बीच यह व्यापक न हो तो आपका अनुभव मुझको हो ही नहीं सकता।

पास पहुँचाना चाहिए। उसके बाद उसको शास्त्र के रूप में पा गये यानि जीने की कला के रूप में। अभी जो कुछ भी अर्थशास्त्र है वो लाभोन्मादी है। उससे तो आदमी सुखी हो नहीं सकता। सभी मानव के सुखी होने का रास्ता है तो केवल आवर्तनशील अर्थशास्त्र विधि से। स्वाभाविक है और व्यवस्था के अनुरूप है। दूसरा प्रबंध लिखा है - “व्यवहारवादी समाजशास्त्र”। मनुष्य व्यवहारपूर्वक ही संतुष्टि पाता है, मनुष्य के साथ ही व्यवहार करता है, व्यवहार न्यायपूर्वक होता है तो संतुष्टि होती है। इस प्रबंध का मूल ध्रुव बिन्दु है - मानवीयतापूर्ण आचरण फलस्वरूप राष्ट्रीय आचार संहिता के रूप में हम मानवीय आचरण को स्वीकार कर सकते हैं। सभी देशों के देशवासी संविधान के रूप में स्वीकार सकते हैं।

इससे संसार में एक समुदाय का दूसरे समुदाय के बीच जो युद्ध का खौफ बना रहता है उसका निवारण हो सकता है। जब तक युद्ध के प्रयास होते रहेगे तब तक मानव धरती को तंग किये बिना जी नहीं सकेगा और ज्यादा तंग करने के लिए अधिक बुद्धि का प्रयोग करना पड़ेगा। इससे विज्ञान बुद्धि का भी मूल्यांकन हो जाता है। युद्ध के संरक्षण के लिए बहुत सा विज्ञान और वैज्ञानिक लगे हुए हैं और इसके लिए पैसा पाते हैं अपने को धन्य मानते हैं। धरती को बर्बाद करना है बात इतना ही है। इससे मुक्ति पाना ही पड़ेगा हमको और इसके लिए समझदार होना ही है और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

तीसरा शास्त्र लिखा है - “मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान” इसमें यह बताना चाहा है कि संचेतना का आधार जीवन है। शरीर, संचेतना को मानव परंपरा में व्यक्त करने का माध्यम है। इस बात

मनुष्य व्यवहार-पूर्वक ही संतुष्टि पाता है, मनुष्य के साथ ही व्यवहार करता है, व्यवहार न्यायपूर्वक होता है तो संतुष्टि होती है। इस प्रबंध का मूल ध्रुव बिन्दु है - मानवीयतापूर्ण आचरण फलस्वरूप राष्ट्रीय आचार संहिता के रूप में हम मानवीय आचरण को स्वीकार कर सकते हैं।

को समझाने की कोशिश की है। उसको आप लोग जांचेंगे। यदि आपको समझ में आ गया तो हमारा लिखना सार्थक हो गया। इस ढंग से दर्शन, विचार, शास्त्र तीनों चीजों को दिया। शास्त्रों का मूल आशय है कि मानव को व्यवस्था में जीना है। जीने के लिए कौन सा तरीका है? विधि क्या है? नीति क्या है? प्रणाली क्या है? इन बातों को शास्त्रों में स्पष्ट किया है। इसके बाद इसको क्रियान्वयन करने के लिए योजनाएं आई। योजनाएं तीन स्वरूप में आई।

पहली योजना है - जीवन विद्या योजना। आदिकाल से मानव स्वयं के प्रति अज्ञानी बना रहा। आदर्श युग में भी आत्मा-परमात्मा नाम की चीजों को बहुत समझाने की कोशिश किया, किन्तु समझा नहीं पाये। ये जो स्वयं के प्रति अनभिज्ञता है यही आदमी को ज्यादा परेशान किये हैं। यदि ये समझ में आ जाये तो आगे की जो बात है वह समझ में आयेगी ही। इसी कठनाई को दूर करने के लिए जीवन विद्या योजना है। इस योजना का केन्द्र बिन्दु जीवन है। जो बच्चे-बूढ़े सभी मानवों में समान रूप से विद्यमान है। मानव की समानता का आधार जीवन ही है। शरीर किसी भी दो मानव के एक समान होते नहीं है। जीवन समान है, जीवन की शक्तियाँ व बल समान है, जीवन का लक्ष्य समान है। जीवन जागृत होना चाहता है, जागृति ही इसका (जीवन का) लक्ष्य है। हर व्यक्ति समाधान को पाना चाहता है, हर व्यक्ति, न्याय चाहता है। आप सब इस बात को जाँच सकते हैं। आपका कोई अंग अवयव ऐसा नहीं है जिसमें न्याय की प्रतीक्षा हो, न्याय को चाहता हो। शरीर का कोई अंग समाधान को चाहता हो। उसी प्रकार शरीर का कोई अंग अवयव नहीं है जो समृद्धि चाहता हो, जबकि मानव न्याय, समाधान,

आदि काल से मानव स्वयं के प्रति अज्ञानी बना रहा। आदर्श युग में भी आत्मा-परमात्मा नाम की चीजों को बहुत समझाने की कोशिश किया, किन्तु समझा नहीं पाये। ये जो स्वयं के प्रति अनभिज्ञता है यही आदमी को ज्यादा परेशान किये हैं। यदि ये समझ में आ जाये तो आगे की जो बात है वह समझ में आयेगी ही।

समृद्धि चाहता ही है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि न्याय, समाधान, समृद्धि यह सब जीवन की ही चाहत है। अतः जीवन के स्वरूप को समझा जाये जीवन की क्रियाओं को समझा जाये, जीवन तृप्त होने के लिये न्याय, धर्म, सत्य को समझा जाये यही छोटा सा काम इसमें से निकला है। इसी के आधार पर जीवन विद्या योजना प्रस्तुत किये हैं। उसे कार्ययोजना में परिणीत किया। विज्ञान के दिग्गज तथा विज्ञान नहीं जानने वाले ज्ञानी-अज्ञानी सभी इसे सुने हैं कुछ लोग समझ गये हैं और दूसरों को समझाने में लग गये हैं और समझाने में सफल हो गये हैं। तब हमें विश्वास हुआ कि जो हम समझे हैं वह सार्थक है और प्रमाणित है, इसे सब समझ सकते हैं और समझ कर समझा सकते हैं। दूसरी योजना है - शिक्षा का मानवीकरण। समझदार होना सबकी आवश्यकता है ही। इसलिये समझदारी की सारी वस्तुओं को शिक्षा में समावेश किया जाये। उसके लिये पाठ्यक्रम (सिलेबस) बनाया गया, स्कूल में प्रयोग किया गया। वह स्कूल है बिजनौर जिले के गोविन्दपुर में। वहाँ पर एक बहुत अच्छा अनुभव हुआ। पहले सारे शिक्षाविद् यह बोलते रहे कि विद्यार्थियों पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है। पर गोविन्दपुर में अनुभव किया गया कि विद्यार्थियों का प्रभाव वातावरण पर पड़ता है। इसको विशालरूप में देखने का अरमान है उसके लिये प्रयत्न जारी है। तीसरी योजना है- परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था। शक्ति केन्द्रित शासन के स्थान पर समाधान केन्द्रित व्यवस्था। इस तरह से दर्शन, शास्त्र, और योजनाएं निस्पंदित होती है।

हर व्यक्ति समाधान को पाना चाहता है, हर व्यक्ति न्याय चाहता है। आप सब इस बात को जाँच सकते हैं। शरीर कोई अंग अवयव ऐसा नहीं है जिसमें न्याय की प्रतीक्षा हो, न्याय को चाहता हो, समाधान को चाहता हो, जो समृद्धि चाहता हो, जबकि मानव न्याय, समाधान, समृद्धि चाहता ही है।

जय हो, मंगल हो, कल्याण हो।

जीवन विद्या

जीवन को मैं समझा हूँ, आपको समझाने का प्रयास यहाँ से शुरू होता है। इस प्रक्रिया का नाम “जीवन विद्या” है। पहले आपको स्पष्ट करना चाहते हैं जीवन में समानता नित्य विद्यमान है। जीवन क्या चीज है इस बात को हर व्यक्ति जानना, मानना चाहता है और उसके परिणामों को प्रमाणित करना चाहता है यह इसका मूल उद्देश्य है। ‘जीवन’ न भौतिक है न अभौतिक है। ‘जीवन’ परमाणु है, गठनपूर्ण परमाणु है। गठनपूर्णता क्या है? इस परमाणु में न तो विस्थापन होता है और न ही प्रस्थापन होता है। जबकि भौतिक रासायनिक रूप में जो भी परमाणु है उनमें समाहित अंशों में प्रस्थापन-विस्थापन होना पाया जाता है इसे ही हम “परिणाम” कहते हैं। परमाणु के निहित अंशों की संख्या में परिवर्तन होता है। वही परिवर्तन है और कोई परिवर्तन संसार में होता ही नहीं है। आदमी जब भी कोई परिवर्तन करा सकेगा तो परिणामशील परमाणुओं के अंशों में परिवर्तन ही करा पायेगा। इन परमाणुओं की दो प्रजातियाँ होती हैं - एक भूखा परमाणु, दूसरा अजीर्ण परमाणु। जिन परमाणु में तृप्त होने के लिए कुछ अंशों की भूख (आवश्यकता) बनी रहती है उन्हें भूखा परमाणु कहा गया। ऐसे परमाणु जिनमें कुछ अंश बहिर्गमित होना चाहते हैं उन्हें अजीर्ण परमाणु कहा है। इस तरह परमाणु दोनों तरह के तृप्त होने के अर्थ में ही क्रियाशील रहते हैं।

दूसरों को समझाने में लग गये हैं और समझाने में सफल हो गये हैं। तब हमें विश्वास हुआ कि जो हम समझे हैं वह सार्थक है और प्रमाणित है, इसे सब समझ सकते हैं और समझ कर समझा सकते हैं। दूसरी योजना है - शिक्षा का मानवीकरण। समझदार होना सबकी आवश्यकता है ही।

वह तृप्त परमाणु है गठनपूर्ण परमाणु। यह गठनपूर्ण परमाणु ही चैतन्य इकाई है। चैतन्य इकाई का नाम इसलिये दिया कि संज्ञानशीलता को, संवेदनशीलता को पूरा प्रमाणित करने की शक्ति जीवन में है। **जीवन के अभाव में यदि शरीर रचित भी कर लें तो संवेदनशीलता को ही प्रमाणित नहीं कर सकेंगे। संज्ञानशीलता तो दूर की बात है।** इस ढंग से मनुष्य संवेदनशीलता, संज्ञानशीलता को प्रमाणित करने के क्रम में ही व्यवस्था में जी पाता है और समग्र व्यवस्था में भागीदारी कर पाता है। बस यह छोटा-सा काम है। संवेदनशीलता को जीवावस्था के सभी जीव-जानवर प्रमाणित करते हैं। मानव संज्ञानशीलता को प्रमाणित किये बिना तृप्त होता नहीं है, सुखी होता नहीं है, चाहे जितना भी सिर कूट ले।

मनुष्य सुखी होना ही चाहता है। सुखी होने के क्रम में कभी हम सोचते हैं कि सुविधा संग्रह से सुखी हो जायेंगे, कभी जप-तप से सुखी हो जायेंगे। सभी आदमी सुखी होने के लिये कोई-ना-कोई प्रयास करते ही हैं किन्तु इन प्रयासों से किसी को तृप्ति हुआ और निरंतर सुख मिला, इसका प्रमाण मिला नहीं। अब सुखी होने के क्रम में जैसा मैं सुखी हुआ समझदारी के आधार पर; मैं सोचता हूँ हर व्यक्ति समझदार होने पर सुखी हो सकता है। **सही में हर मानव एक है गलती में अनेक।** इसके लिये हर मानव में समानता की वस्तु को पहचानने की आवश्यकता थी ऐसी चीज जो सही का धारक-वाहक बन सके वह चीज मुझे समझ में आया, वह ‘जीवन’ है।

जीवन क्या चीज है इस बात को हर व्यक्ति जानना, मानना चाहता है और उसके परिणामों को प्रमाणित करना चाहता है यह इसका मूल उद्देश्य है। ‘जीवन’ न भौतिक है न अभौतिक है। ‘जीवन’ परमाणु है, गठनपूर्ण परमाणु है। गठनपूर्णता क्या है? इस परमाणु में न तो विस्थापन होता है और न ही प्रस्थापन होता है।

‘जीवन’ जब समझदारी के साथ जीता है तब हर जगह समाधान को प्रस्तुत करता है। समाधान के साथ हर व्यक्ति सुखी होता है। समस्या के साथ दुखी होता है। समझने वाली वस्तु ‘जीवन’ है मानव शरीर को चलाता हुआ। हम लोग बैल को, गाय को और जानवरों को जो कुछ भी सिखाया वह सब संवेदनशीलता के अर्थ में ही है। अब आदमी एक दूसरे को कैसे सिखाए? मारपीट कर तो कोई किसी को कुछ समझा नहीं पाया है। आजीविका के भय से आदमी जितनी देर नियंत्रित रहता है, उसके बाद भय का कवच भी उतार कर रख देता है। इसका उदाहरण इतिहास में दास-दासी प्रथा के अंत के रूप में मिलता है। संवेदनशीलता में भय और प्रलोभन होता ही है। भय और प्रलोभन के ही आधार पर सारे राष्ट्र, सारे धर्म, सारी प्रौद्योगिकी व्यवस्था, व्यापार संस्था व्यवस्था देने का दावा करते हैं। जबकि ना भय व्यवस्था है और ना प्रलोभन व्यवस्था है क्योंकि मनुष्य को न भय स्वीकार होता है न प्रलोभन। तो क्या होना चाहिए मनुष्य के पास; मूल्य और मूल्यांकन। मूल्यों को पहचानने की विधि चाहिए। मूल्यांकन करने की तकनीक होनी चाहिए। ये दोनों चीज हमारे पास रहने से निरंतर समाधान की परंपरा चलेगी। मूल्य और मूल्यांकन भी समझदारी की ही प्रक्रिया है। यह शरीर की शारीरिक, यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है। अभी तो विज्ञान का कहना है सभी चीज यांत्रिक है, कुछ भावुक नहीं है। तो यांत्रिकता में भय और प्रलोभन से जूझते रहो। यांत्रिक विधि से सोचते-करते मानव यहाँ तक पहुँच गया कि यह धरती रहेगी अथवा नहीं? इसी पर प्रश्न

मनुष्य सुखी होना ही चाहता है। सुखी होने के क्रम में कभी हम सोचते हैं कि सुविधा संग्रह से सुखी हो जायेंगे, कभी जप-तप से सुखी हो जायेंगे। सभी आदमी सुखी होने के लिये कोई-ना-कोई प्रयास करता ही है किन्तु इन प्रयासों से किसी को तृप्ति हुआ और निरंतर सुख मिला, इसका प्रमाण मिला नहीं।

चिन्ह लग गया।

समस्या का निराकरण समस्या से तो होगा नहीं, चाहे कितनी भी समस्याएँ एकत्रित कर लो। समस्या का निराकरण समाधान से ही होगा। समाधान के बिना हमको राहत नहीं है। समाधान पाने के लिए मूल्य और मूल्यांकन विधि से व्यवस्था का समीकरण करने वाली पद्धति को हमें विकसित करना है। इस तरह जीवन संबंध, जीवन तृप्ति, जीवन लक्ष्य को केन्द्र में रखकर व्यवस्था समीकरण करेंगे तो हम सफल हो जाएंगे। यदि जीवन को भुलावा देकर शरीर के अर्थ में हम जितने भी व्यवस्था देते हैं उससे अव्यवस्था ही पैदा होगी। शरीर को अच्छा लगने से सदैव अच्छा होता नहीं है। कोई भी शरीर क्रिया सतत् बनी नहीं रहेगी। ‘शरीर’ क्रिया को बारम्बार बदलना ही है। ‘जीवन’ सतत् बना ही रहता है। इसलिए जीवन के आधार पर निर्णय लेने की सद्बुद्धि की आवश्यकता है। जीवन सबमें समान है, जीवन की ताकत समान है, जीवन में बल और शक्ति अक्षय है। ये न कभी खत्म होता है न घटता है। ये क्यों नहीं घटता? जीवन परमाणु में परिणाम में कोई परिवर्तन होना नहीं है। तो उसका बल और शक्ति अक्षय है। स्थिति में बल प्रमाणित होता है और गति में शक्ति। इसकी गवाही क्या है मनुष्य अपने को सतत् होना स्वीकारता है। होना ही वर्तमान है। वर्तमान में ही हर वस्तु का अध्ययन होता है। उसी क्रम में वर्तमान में सबमें ‘जीवन’ समान है, जीवन के बल, जीवन की शक्तियाँ समान है। चौथी बात जीवन का लक्ष्य सभी आदमी सुखी होना चाहते हैं। सबका लक्ष्य सुखी होना ही है। इन चारों बातों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

संवेदनशीलता में भय और प्रलोभन होता ही है। भय और प्रलोभन के ही आधार पर सारे राष्ट्र, सारे धर्म, सारी प्रौद्योगिकी व्यवस्था, व्यापार संस्था व्यवस्था देने का दावा करते हैं। जबकि ना भय व्यवस्था है और ना प्रलोभन व्यवस्था है। क्योंकि मनुष्य को न भय स्वीकार होता है न प्रलोभन।

जीवन गठनपूर्ण परमाणु, चैतन्य इकाई है। अब इसको कौन बनाता है ये भी बात आती है। अभी तक कोई बनाने वाला, बिगाड़ने वाला है ये झंझट रहा ही है। उसी आधार पर मनुष्य भी सोचता है। हम भी बना सकते हैं, बिगाड़ सकते हैं यही विज्ञान का मूल आधार है। तो बना सकने, बिगाड़ सकने के झंझट में पड़ने के कारण काफी कुंठाएं आ चुकी हैं। कुछ देश कहते हैं हम एटम बम बना सकते हैं, कुछ नहीं बना सकते इसलिए ये समानता का कोई अर्थ ही नहीं हुआ। क्योंकि समानता अस्तित्व सहजता में है और बम बनाना सह-अस्तित्व विरोधी है। अस्तित्व जो है सह अस्तित्व सहज है। असहजता से हम कुछ भी करते हैं कहीं न कहीं उसका विरोध होता ही है। इसी तरह व्यापार हो गया लाभोन्मादी और इस कारण से ज्यादा कम वाला पिशाच पीछे पड़ गया। एक आदमी सोचता है, कम है। एक आदमी सोचता है, ज्यादा है और झगड़ा बना ही रहता है। इस तरह मनुष्य को स्वस्थ रूप में, सुखी होकर कहीं जीना बना नहीं। इसलिए स्वस्थ रूप में जीने के लिए हर मनुष्य को मूल्य और मूल्यांकन विधि से जीना होगा। **उसका पहला चरण है समझदारी, दूसरा चरण है ईमानदारी, तीसरा चरण है जिम्मेदारी, चौथा चरण है भागीदारी।** इन चार चरण में मानव को अपनी समझदारी को प्रमाणित करना है। समझदारी के अर्थ में तीन चीजें हैं जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण। जीवन के स्वरूप के बारे में अभी आपको बतलाया। जीवन नित्य है, सुखाकांक्षी है और सुख को मानव परंपरा में ही प्रमाणित कर सकता है। इसके लिए प्रयत्न करने का पहला मुद्दा है जीवन को समझना जिसका नाम है “जीवन-विद्या”। विद्या का धारक-वाहक जीवन है। विद्या के स्वरूप में तीन

शरीर को अच्छा लगने से सदैव अच्छा होता नहीं है। कोई भी शरीर क्रिया सतत् बनी नहीं रहेगी। ‘शरीर’ क्रिया को बारम्बार बदलना ही है। ‘जीवन’ सतत् बना ही रहता है। इसलिए जीवन के आधार पर निर्णय लेने की सद्बुद्धि की आवश्यकता है।

भाग होता है - विद्या, विद्वता और विद्वान। विद्या :- संपूर्ण अस्तित्व में ही विद्या है। अस्तित्व में जीवन भी अविभाज्य है। विद्वता :- जो समझदारी होता है वह जीवन में होता है। विद्वान :- मनुष्य होता है।

तो समझने वाला वस्तु क्या है ? संपूर्ण सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व। यही विद्या है। विद्वता का धारक वाहक वस्तु जीवन है और उसे प्रमाणित करने वाला मनुष्य है। मनुष्य शरीर और जीवन का संयुक्त रूप है। इस विधि से मनुष्य की महिमा और जीवन की महिमा, सह-अस्तित्व की महिमा अपने आप से स्पष्ट होता है। अस्तित्व सहज है सह-अस्तित्व। सह-अस्तित्व सहज है विकास। विकास सहज है जीवन। जीवन सहज है जागृति। इसके लिए संसार दृश्य है। रासायनिक भौतिक रचना विरचनाएं एक दूसरे से अंतर्संबंधित घटनाएं हैं। ये सारी घटनाएं नित्य वर्तमान हैं। रासायनिक भौतिक विरचनाएं ना हो, ऐसा कोई क्षण आप नहीं पायेंगे। कोई दिन नहीं पायेंगे। कोई शताब्दी नहीं पायेंगे। इन सारी रचना-विरचनाओं का दृष्टा होता है जीवन। देखने-समझने वाला जीवन ही होता है शरीर कुछ भी नहीं समझता है। शरीर के जिस भाग में जीवन की जीवन्तता नहीं रहती उसे शून्य कहते हैं। उस जगह में ठंडा-गरम कुछ भी लगाओ समझ में नहीं आता।

स्वस्थ रूप में जीने के लिए हर मनुष्य को मूल्य और मूल्यांकन विधि से जीना होगा। उसका पहला चरण है समझदारी, दूसरा चरण है ईमानदारी, तीसरा चरण है जिम्मेदारी, चौथा चरण है भागीदारी। इन चार चरण में मानव को अपनी समझदारी को प्रमाणित करना है।

दूसरा अस्पतालों में आपरेशन करते समय बेहोश करने के बाद कुछ भी काट-पीट की जाती है कोई पता नहीं रहता है। इन आधार पर समझ में आता है जहां पर जीवन जीवन्तता बनाए रखता है वहीं

संवेदनाएं समझ में आती है। जीवन अपनी तृप्ति के लिए जहां जिज्ञासु होता है उसके लिए ही वह सत्यता, यथार्थता, वास्तविकता समझता है। फलस्वरूप जीवन सुखी होने का आधार बनता है। इस कारण से हमको जीवन को समझने की आवश्यकता हुई। ये आवश्यकता अमीर, गरीब, बली, निर्बल, बड़े, छोटे सबको ही है।

इसमें दूसरा सूत्र मिलता है जीवन-विद्या से कोई वर्ग-संघर्ष का आधार नहीं है। इसमें सर्वशुभ का आधार है। सबके निरंतर सुखी होने का स्रोत है। समाधानित रहने का प्रमाण है। ये सब चीजें अपने आप से उद्गमित होते हैं। मैं समझता हूँ मानव इसी को चाहता है ऐसे ही जीना चाहता है। हम सबके साथ ही सुखपूर्वक जी सकते हैं। **अकेले कोई होता नहीं ये सिद्धान्त निकलता है।** इस धरती के संबंध को छोड़कर कोई मानव सुखी होने का प्रयत्न करें तो हो नहीं सकता। पानी से संबंध छोड़कर सुखी कोई हो नहीं सकता। किन्हीं भी चीजों के संबंध को छोड़कर हम सुखी नहीं हो सकते तो जीवन संबंध को छोड़कर कैसे जियोगे। कैसे यांत्रिक हो जायेगा? और भावनात्मक संसार से कैसे मुक्ति पायेगा। आप ही सोचो ये कैसे हो सकता है। हम बाजार में जाते हैं, सब्जी, अनाज, सोना, लोहा सबका भाव पूछते हैं। उस भाव का दृष्टा कौन है? मनुष्य ही होता है। जब सबका भाव है तो मनुष्य का भी भाव होगा। मनुष्य का भाव पता लगाना ही आवश्यकता रही है, उसको छोड़कर सबका भाव पकड़ लिया। जिनसे लाभ अवसर बना उन सभी भावों को पकड़ लिया जबकि मनुष्य का भाव (मूल्य) समझ लें तो लाभ-हानि से मुक्त हो जायेंगे। मानव मूल्य समझने से, जीवन मूल्य समझने से, स्थापित

अस्तित्व सहज है सह-अस्तित्व। सह-अस्तित्व सहज है विकास। विकास सहज है जीवन। जीवन सहज है जागृति। इसके लिए संसार दृश्य है। रासायनिक भौतिक रचना विरचनाएं इस ढंग से यह सब एक दूसरे से अंतर्संबंधित घटनाएं हैं। ये सारी घटनाएं नित्य वर्तमान हैं।

मूल्य समझने से, शिष्ट मूल्य समझने से हमको लाभ-हानि की आवश्यकता शून्य हो जाती है। संसार की छाती का कितना बड़ा बोझ हल्का हो सकता है। लाभ-हानि के चक्कर में आदमी न तो अपने को बचाता है, पराया तो बचाना ही नहीं। लाभ-हानि के चक्कर में सबका कल्ल, चकनाचूर। इस झंझट से मुक्ति तो इसी विधि से आता है कि मानव, मूल्यों को समझने में समर्थ होता है। उसके पहले ये होने वाला नहीं है। हम बहुत-बहुत सिर कूटे हैं किन्तु कुछ हुआ नहीं। इसकी गवाही है - साम्यवाद और पूंजीवाद। साम्यवाद भी अंततोगत्वा राष्ट्रीय लाभ के लिए जूझा, लाभ से मुक्त नहीं हुआ और पूंजीवाद सदा-सदा घोषित लाभवादी है। इसलिए तो लाभ-हानि से मुक्त होने के लिए मनुष्य को अपने मूल्यों को समझने की आवश्यकता है। मानव मूल्यों को निर्वाह करने की आवश्यकता है। ये कैसे आयेगी जीवन विद्या समझ में आने से अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में समझ में आने से और मानवीयतापूर्ण आचरण में विश्वास होने से, मानव मूल्य चरितार्थ होता है। इसी का नाम है समझदारी।

मानव मूल्य जब हम चरितार्थ करना शुरू करते हैं तभी हम सही करने में (समर्थ) निष्णात होते हैं, पारंगत होते हैं। जब तक किसी न किसी उन्माद से जकड़े रहते हैं और हमको सही करने का कोई रास्ता मिलता नहीं। समझदार होने के लिए जीवन को समझना तथा अस्तित्व को समझना है। यही जीवन विद्या है। विद्या का दो भाग है ज्ञान और दर्शन। इन दोनों का धारक वाहक जीवन ही है। जीवन ज्ञान का मतलब जीवन की जीवन को समझने की प्रक्रिया है। जीवन ही जब अस्तित्व को समझता है इस प्रक्रिया को अस्तित्व दर्शन कहा।

मनुष्य का भाव (मूल्य) समझ लें तो लाभ-हानि से मुक्त हो जायेंगे। मानव मूल्य समझने से, जीवन मूल्य समझने से, स्थापित मूल्य समझने से, शिष्ट मूल्य समझने से हमको लाभ-हानि की आवश्यकता शून्य हो जाता है। संसार की छाती का कितना बड़ा बोझ हल्का हो सकता है।

सभी जीवन समान है सारे मनुष्यों में जीवन एक समान है। समानता की बात कैसे आ गई। जीवन की जीवन को समझने की विधि में, प्रमाणित करने की विधि में, अस्तित्व को समझने की विधि में सह-अस्तित्व को प्रमाणित करने की विधि में यह आया कि सभी जीवन समान है।

समझने की व्यवस्था शरीर में कहीं भी हाथ-पैर, कान-नाक, चक्षु, मेधस, हृदय कहीं भी नहीं है। यह व्यवस्था जीवन में ही है। जीवन ही जीवन को और अस्तित्व को समझने वाली वस्तु है और दूसरा कोई समझेगा नहीं। इस ढंग से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं मनुष्य समझदारी व्यक्त करने के लिए (प्रमाणित करने के लिए) शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में होना जरूरी है। यह केवल शरीर या केवल जीवन रहने पर नहीं होगा। प्रमाणित करने का केन्द्र बिन्दु हुआ व्यवस्था में जीना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना। यही समझदारी की सार्थकता है। हम तब व्यवस्था में जीना ही चाहते हैं ये प्रक्रिया जीवन सहज ही है। ये कोई लादने वाली चीज नहीं है।

मानव मूल्य जब हम चरितार्थ करना शुरू करते हैं तभी हम सही करने में (समर्थ) निष्णात होते हैं, पारंगत होते हैं। जब तक किसी न किसी उन्माद से जकड़े रहते हैं और हमको सही करने का कोई रास्ता मिलता नहीं। समझदार होने के लिए जीवन को समझना तथा अस्तित्व को समझना है।

अस्तित्व को समझने के क्रम में अस्तित्व स्वयं सह-अस्तित्व है क्योंकि सत्ता (व्यापक) में सम्पृक्त (डूबी, भीगी, घिरी) प्रकृति ही संपूर्ण अस्तित्व है। प्रकृति अपने में एक-एक गिनने योग्य वस्तु है। गिनने वाला मनुष्य है। ये गिनने योग्य वस्तु प्रकृति में जड़ प्रकृति और चैतन्य प्रकृति सब हैं। छोटा सा सूत्र है - समझदारी से सुखी, नासमझी से दुखी। अभी तक सारा संसार जूझता रहा। पहले जूझता रहा तप करो, योग करो, सन्यासी हो जाओ तो सुखी हो जाओगे। लोग इसका भी प्रयोग किए कुछ प्रमाण मिला नहीं, परंपरा बनी नहीं।

दूसरी बार ये जूझे कि खूब वस्तु को इकट्ठा कर लो सुखी हो जाओगे। उससे भी सुखी हुए नहीं। दोनों बातों से कोई सुखी नहीं हुआ। तब सोचने की बात है इसी क्रम में निकल कर आया कि समझदारी से सुखी। समझदारी में सही होता है। सही में सभी एक होते हैं गलती में अनेक। हमारी गलती से आप सम्मत/सहमत हो जाएं आपकी गलती से हम सम्मत/सहमत हो जाएं ऐसा होता नहीं है।

जो गलती है तो गलती है आपके लिए भी हमारे लिए भी। सही में हम एक ही हैं ये बात हमको समझ आ गयी। समझदारी से ही हमारा कल्याण प्रशस्त होता है। समझदारी से ही सुखी, समृद्ध होते हैं, समझदारी में वर्तमान में व्यवस्था के रूप में जीते हैं। समझदारी से ही सह-अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। **सुख के चार चरण है :- समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व।** ये चार चीज आता है तो हम सुखी हो जाते हैं। जब तक ये चारों चीज नहीं आती है तब तक हम प्रयत्न करते रहते हैं। इस प्रयत्न के क्रम में ही हम तमाम जप-तप, पूजा-पाठ, योग-यज्ञ कर डाले हैं। बहुत सारी चीजें भी इकट्ठा किया।

किन्तु सब लोग खुश नहीं हुए। सभी सुखी होने के लिए समझदार है। समझदारी सबमें पहुंचाया जा सकता है। समझदारी के लिए पहला चरण है अस्तित्व को समझना। अस्तित्व चार अवस्था में है। पहला पदार्थावस्था जिसमें मिट्टी, पाषाण, मणि, धातु आदि हैं ये सब अपने अपने आचरण में प्रमाणित हैं ही। दूसरी प्राणावस्था जिसमें सभी पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ, औषधियाँ हैं ये सब भी अपने आचरणों में स्वयं प्रमाणित है। तीसरा जीवावस्था जिसमें मनुष्य को छोड़कर सभी जीव,

समझदारी से सुखी, नासमझी से दुखी। अभी तक सारा संसार जूझता रहा। पहले जूझता रहा तप करो, योग करो, सन्यासी हो जाओ तो सुखी हो जाओगे। लोग इसका भी प्रयोग किए कुछ प्रमाण मिला नहीं, परंपरा बनी नहीं। दूसरी बार ये जूझे कि खूब वस्तु को इकट्ठा कर लो सुखी हो जाओगे। उससे भी सुखी हुए नहीं।

पक्षी, आते हैं, ये सभी भी अपने त्व सहित व्यवस्था के रूप में प्रमाणित हैं ही। चौथा ज्ञानावस्था है जिसमें मनुष्य ही है जिसका व्यवस्था होने में अभी प्रतीक्षा है। अब सोचिए सबसे विकसित अवस्था सबसे पीछे है। क्या मतलब है इसका ? दुखी नहीं होगा तो क्या होगा।

तो हमारा चरित्र भी विकसित के रूप में होने की आवश्यकता है। आचरण के रूप में हर वस्तु अपनी व्यवस्था को प्रमाणित करते हैं। मानव भी अपने आचरण के अनुसार प्रमाणित करेगा। ये एक सूत्र मिलता है। इस सूत्र को हम, आप, सबको जांचना ही है। जांचने जाते हैं तो अपने में कौन सा चीज समझने वाला है, उस चीज को पहले समझना। समझकर निर्वाह करने वाला क्या चीज है इसको समझना। और समझकर क्या पायेंगे उसको समझना। यह मनुष्य का पहुँच है। मानव ज्ञानावस्था में गण्य है। ज्ञानावस्था में गण्य होने का क्या आधार है ? मनुष्य जिसको समझा हुआ समझता है उसी ढंग से कार्य व्यवहार करता है। जाना नहीं रहता तब भी मानने की बात हर व्यक्ति में है और हम इसको जानते हैं ऐसा कहता है दावे के साथ जाना नहीं रहता माना रहता है लेकिन बोलते समय जानता हूँ, कहता है, ये व्यतिरेक है ही। भ्रमित आदमी में यही व्यतिरेक है। 99% व्यक्ति शरीर को ही जीवन मान लिए हैं जिसके फलस्वरूप ही तमाम परेशानियाँ पैदा की हैं और परेशानियों से त्रस्त हुआ भी हैं, अब परेशानियों से मुक्ति पाने की इच्छा हुई है, उसी इच्छा के तहत यह कार्यक्रम है। चारों अवस्थाओं में मनुष्य ही है जो बिना समझे, समाधानित हुए बिना सुखी नहीं हो सकता। पदार्थावस्था परिणामानुषंगी विधि से नियंत्रित है। प्राणावस्था

समझदारी से ही सुखी, समृद्ध होते हैं, समझदारी में वर्तमान में व्यवस्था के रूप में जीते हैं। समझदारी से ही सह-अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। सुख के चार चरण हैं:- समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व। ये चार चीज आता है तो हम सुखी हो जाते हैं। जब तक ये चारों चीज नहीं आती है तब तक हम प्रयत्न करते रहते हैं।

बीजानुषंगी विधि से नियंत्रित है। जीवावस्था, वंशानुषंगी विधि से नियंत्रित है। नियंत्रित रहने का प्रमाण ही है व्यवस्था में रहना। निश्चित आचरण में रहना। मनुष्य को छोड़कर प्रकृति की हर इकाई अपने निश्चित आचरण में है। मनुष्य में भी निश्चित आचरण की जरूरत है। मनुष्य संस्कारानुषंगी विधि से नियंत्रित होना है। संस्कार क्या है ? समझदारी है। समझदारी का प्रमाण है मानवीयता पूर्ण आचरण। जब मानव समझदार होता है तो व्यवस्था में जीता है और तब इसका आचरण मानवीयता पूर्ण होता है। जब व्यवस्था में नहीं जी पाता तो अमानवीय आचरण कहलाता है। अब मानवीय आचरण और अमानवीय आचरण का परिभाषा बनता है। इसके बाद हमको पता लगता है इसकी जरूरत है या इसकी जरूरत नहीं है। जिसकी जरूरत होती है उसकी ओर आदमी की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इस तरह मानव के जागृत होने का रास्ता बना है। जीवन न पैदा होता है, न मरता है और शरीर रचित होता है और विरचित होता है। जीवन, जीवन सहज विधि से मानव शरीर को चलाना चाहता है। जीवन सहज विधि क्या है सुखी होने का कार्यक्रम। सारे पशु केवल जीने की आशा करते हैं। वंशानुषंगी विधि से। जबकि मानव सुखपूर्वक जीना चाहता है किन्तु जब मानव वंशानुषंगी विधि से जीने जाता है तो परेशान होता है। इतनी ही बात है।

99% व्यक्ति शरीर को ही जीवन मान लिए हैं जिसके फलस्वरूप ही तमाम परेशानियाँ पैदा की हैं और परेशानियों से त्रस्त हुआ भी हैं, अब परेशानियों से मुक्ति पाने की इच्छा हुई है, उसी इच्छा के तहत यह कार्यक्रम है। चारों अवस्थाओं में मनुष्य ही है जो बिना समझे, समाधानित हुए बिना सुखी नहीं हो सकता।

इसको अच्छे ढंग से हमको समझने की जरूरत है इसको अच्छे ढंग से प्रमाणित करने की जरूरत है। समझदारी ही प्रमाणित करने की वस्तु है। जब मैं आपसे समझकर दूसरों को समझा पाता हूँ तभी

आप प्रमाणित होते हैं। इस तरह समझदारी परंपरा के रूप में बहती है। नासमझी परंपरा में बह नहीं सकती। समझदारी की वस्तु में विविधता नहीं होती। विविधता होती है तो प्रस्तुति में। इसलिए पीढ़ी दर पीढ़ी और सुदृढ़ होगी, प्रखर होगी। सही करने का तरीका और प्रखर होता जाता है। सही करने की सार्थकता और सुलभ हो जाती है। सर्वमानव के लिए इसकी आवश्यकता है। इसलिए समझदारी संपन्न मानव ही परंपरा को सही ढंग से आगे पीढ़ी को अर्पित कर स्वयं संतुष्ट हो सकता है आगे पीढ़ी संतुष्ट हो सकती है।

मनुष्य संस्कारानुषंगी इकाई है। संस्कार समझदारी ही होती है। चूंकि गलतियाँ किसी को स्वीकार नहीं है इसलिए गलतियाँ संस्कार होती नहीं है। गलतियों को कोई स्वीकारता नहीं है किन्तु फंसा रहता है। कोई आदमी चाहे हजार गलती किया हुआ हो किन्तु उसे वे गलतियाँ स्वीकृत नहीं है। चूंकि गलतियाँ किसी को स्वीकार नहीं है इसलिए उन्हें कोई आगे पीढ़ी को अर्पित नहीं करता, अतः नासमझी (गलतियों) की परम्परा नहीं बनती। तो इन तमाम गवाहियों के साथ यही निष्कर्ष निकलता है कि समझदारी ही परंपरा की गंगा है। समझदारी के लिए ध्रुव बिन्दु है समानता। समानता का ध्रुव है जीवन। जीवन में गठनपूर्णता और अक्षय बल, अक्षय शक्ति ये ही समानताएं हैं। मैं कितनी भी आशा, विचार, इच्छा, संकल्प करता हूँ मुझमें आशा, विचार, इच्छा, संकल्प करने की ताकत बनी ही रहती है। इस तरह से जीवन में अक्षय बल और शक्ति होने के लिए परिणामशीलता से मुक्त हुए बिना हो नहीं सकता ये तर्क विधि से जीवन की गठनपूर्णता को स्वीकारने की बात बनती है।

मनुष्य संस्कारानुषंगी इकाई है। संस्कार समझदारी ही होती है। चूंकि गलतियाँ किसी को स्वीकार नहीं है इसलिए गलतियाँ संस्कार होती नहीं है। गलतियों को कोई स्वीकारता नहीं है किन्तु फंसा रहता है। कोई आदमी चाहे हजार गलती किया हुआ हो किन्तु उसे वे गलतियाँ स्वीकृत नहीं है।

हमको समझदारी आ गयी इसको कैसे जांचा जाए। इसको व्यवहार में, कार्य में, व्यवस्था में जांचा जाता है। मैंने व्यवहार और कार्य में दर्जनों बार जांचा व्यवस्था के रूप में हम स्वयं जीते हैं। किन्तु समग्र व्यवस्था अभी भी बनी ही नहीं है मानव परंपरा में। व्यवस्था में जीने के बाद हमारे अनुभव (अस्तित्व में जो वस्तु जैसा है उसको वैसा ही समझने वाली बात का नाम है अनुभव) के लिए पुनः प्रमाण मिल जाता है। हमारा अनुभव बुलंद होता रहता है। इस ढंग से अनुभवमूलक विधि से जीने वाली बात आयी। इस तरह निष्कर्ष निकला मनुष्य समझदारी पूर्वक अनुभवमूलक विधि से व्यवस्था में जीता है। जीवावस्था वंशानुषंगी विधि से प्राणावस्था बीजानुषंगी विधि से और पदार्थावस्था परिणामानुषंगी विधि से, व्यवस्था में रहते हैं।

इस मुद्दे पर पहुँचे कि समझदारी निश्चित है। समझदारी का धारक वाहक निश्चित है, इस कारण समझदारी का प्रमाण निश्चित है। समझदार जीवन ही होता है। समझता जीवन ही है समझदारी का प्रमाण मानव परंपरा में होता है क्योंकि मानव शरीर में ही पूर्ण मेधस की रचना पायी जाती है और किसी परंपरा (जीव) में समझदारी का प्रमाण मिलेगा नहीं। सह-अस्तित्व में पूरकता, उदात्तिकरण, विकास क्रम, विकास और जागृति ये सभी चीज समायी है। इन सभी बिन्दुओं को समझने की जो विधि है वह मानव में ही समाहित है, क्षमता भी मानव में ही समाहित है।

अस्तित्व को समझने का मूल मुद्दा इतना ही है कि अस्तित्व सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही है। ये एक दूसरे के साथ ओत-प्रोत और सदा-सदा के लिए अविभाज्य, निरंतर विद्यमान, वर्तमान होना पाया

हमको समझदारी आ गयी इसको कैसे जांचा जाए। इसको व्यवहार में, कार्य में, व्यवस्था में जांचा जाता है। मैंने व्यवहार और कार्य में दर्जनों बार जांचा व्यवस्था के रूप में हम स्वयं जीते हैं। किन्तु समग्र व्यवस्था अभी भी बनी ही नहीं है मानव परंपरा में। व्यवस्था में जीने के बाद हमारे अनुभव के लिए पुनः प्रमाण मिल जाता है।

जाता है। प्रकृति को व्यापक वस्तु से अलग करने की कोई विधि नहीं है, अलग करने का कोई प्रयोजन नहीं है, अलग हो नहीं सकते। इस तरह अस्तित्व में जो नहीं है उसकी हम कल्पना करके भी कुछ नहीं कर पायेंगे। अस्तित्व में जो है उसी को समझने की बात है। प्रमाणित करने की बात है। अस्तित्व ही चार अवस्थाओं में व्यक्त है।

यदि समझदारी को हम प्रमाणित नहीं कर पायेंगे तो ना हम परिवार व्यवस्था ना समाज व्यवस्था में जी पायेंगे। हर जगह में हम परेशान होते ही हैं। सात सौ करोड़ मानव का इस धरती पर हो गया लेकिन हमारा व्यवस्था में जीना अभी बना नहीं। संख्या बढ़ने या घटने से आदमी समझ गया हो ऐसा भी कुछ नहीं है। मानव परंपरा में क्या प्रयोजन है : समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व। सह-अस्तित्व विधि से हम पूरक विधि से जी पाते हैं। अभय विधि से वर्तमान में विश्वास करते हैं। समृद्धि विधि से हम परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर पाते हैं। समाधान से ही न्यायपूर्वक जी पाते हैं।

मानव परंपरा में अभी तक जो प्रयत्न किया आदर्शवादी विधि से और भौतिकवादी विधि से हम दोनों विधि से समझदारी को पाये नहीं। उसका मूल कारण है अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में समझ में नहीं आना। अस्तित्व को समझने में कहीं ना कहीं भूल हो गयी फलस्वरूप समझदारी की परंपरा बनी नहीं। जब परंपरा बनी नहीं तो व्यवस्था में जीना कहाँ से आयेगा। समझदारी के अभाव में मानव, मानव के साथ न्यायपूर्वक और प्रकृति (जीव, वनस्पति, पदार्थ) के

अस्तित्व को समझने का मूल मुद्दा इतना ही है कि अस्तित्व सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही है। ये एक दूसरे के साथ ओत-प्रोत और सदा - सदा के लिए अविभाज्य, निरंतर विद्यमान, वर्तमान होना पाया जाता है। प्रकृति को व्यापक वस्तु से अलग करने की कोई विधि नहीं है।

साथ नियमपूर्वक, संतुलित रूप से जीना बना नहीं। इसी के कारण अनुपम नैसर्गिकता को हनन करता रहा।

मनुष्य को न्याय मिला नहीं। बड़े-बड़े न्यायालयों के न्यायाधीशों से पूछा गया तो उन्होंने कहा हम फैसला करते हैं न्याय नहीं करते। इस स्थिति में जब न्यायालय, न्याय को नहीं जानता है तो उसे न्यायालय कहना कितना सच होगा और उन्हीं न्यायालयों में कहा जाता है सच बोलो। अब कहाँ तक सच्चाई है न्यायालय में क्या सच्चाई को खोजा जाए। इसी तरह कार्यालय में कार्य क्या होता है? गलतियों को खोजना, अपराध को खोजना और उनको गलतियों और अपराध से रोकना। इसी काम के लिए सारे सरकारी तंत्र में कर्मचारी नियोजित हैं।

मानव जागृत होने के लिए मूल वस्तु 'समझदारी' है। हर मनुष्य को यदि समझदारी पहुँच पाता है तो मानव न्यायपूर्वक जी सकेगा। न्यायपूर्वक जीने के साथ समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व अपने आप से आते हैं। बिना न्याय में जिये ये कोई चीज आयेगा नहीं। इससे पता लगता है मानवीयता का जो रीढ़ है वह न्याय है। न्याय सर्वप्रथम परिवार में प्रमाणित होता है, फिर समाज में और पूरी धरती पर प्रमाणित होता है। न्याय में जीने से मनुष्य तृप्त रहता है, सुखी रहता है, समाधानित रहता है, वर्तमान में विश्वास सुदृढ़ होता जाता है और हमारे व्यवहार में निरंतर प्रखरता, निखार आता जाता है। तो यह सब चीजें न्याय में जीने से अनायास ही उपलब्ध होती है। जिसके लिए कहते हैं यह बहुत पुण्य से मिलेगा। पुण्य का मतलब हमको जो समझ में आया वह है समझदार होना। मनुष्य समझदार होने की परंपरा में अपनी योग्यतायें, क्षमतायें,

अस्तित्व को समझने में कहीं ना कहीं भूल हो गयी फलस्वरूप समझदारी की परंपरा बनी नहीं। जब परंपरा बनी नहीं तो व्यवस्था में जीना कहाँ से आयेगा। समझदारी के अभाव में मानव के साथ न्यायपूर्वक और प्रकृति (जीव, वनस्पति, पदार्थ) के साथ नियमपूर्वक, संतुलित रूप से जीना बना नहीं।

पात्रतायें, अपने आप से प्रमाणित करना शुरू करता है। क्षमता अर्थात् वहन करने वाली क्रिया। वहन क्या करता है? या तो जागृति का या भ्रम का। मानव जब जागृत हो गया तब भ्रम अपने आप विदा हो जाता है। मानव संस्कारानुषंगीय इकाई है। समझदारी या भ्रम परंपरापूर्वक ही आता है। मानव संतान में उसकी परंपरा जन्म से ही विद्यमान होने के कारण वे गुण उसमें प्रचलित प्रेषित हो जाते हैं। इसके बाद आता है पुरुषार्थ और परमार्थ। पुरुषार्थ, परमार्थ के आधार पर मनुष्य समझदार होकर भ्रम से मुक्त होता है। भ्रम से मुक्ति का तात्पर्य जीवन जागृति पूर्वक जीने के कार्यकलाप। अभी तक परंपरा से हमको जो कुछ शिक्षा मिली है वह है शरीर सापेक्ष जीना इसका गवाही है लाभोन्माद, कामोन्माद और भोगोन्माद के लिए पढ़ाते हैं। जबकि मनुष्य, जीवों पशुओं से भिन्न है, भिन्न प्रकार की प्रवृत्ति वाला है। जीवन के कारण मनुष्य में बहुमुखी अभिव्यक्ति है। मनुष्य समाधान चाहता है कोई पशु समाधान नहीं चाहता। मनुष्य समृद्धि चाहता है कोई पशु-पक्षी समृद्धि नहीं चाहता। किसी भी जानवर में, शेर, गाय, सांप, सुअर, आदि में भी संग्रह की प्रवृत्ति नहीं है। चींटी भी संग्रह के उद्देश्य से संग्रह करती है ऐसा कुछ नहीं है। संग्रह के लिए प्रवृत्ति है ऐसा नहीं है। वस्तु मिलता है इकट्ठा किया रहता है। मनुष्य में जानबूझकर संग्रह सुविधा की प्रवृत्तियां होती हैं उसका कारण भोग अतिभोग की वासना है। इस आधार पर समाधान और व्यवस्था लक्ष्य न होकर संग्रह सुविधा हमारा लक्ष्य हो गया और उसके लिए प्रिय, हित लाभ दृष्टिकोण रहा और फलस्वरूप हम दुखी होते

मनुष्य समझदार होने की परंपरा में अपनी योग्यतायें, क्षमतायें, पात्रतायें, अपने आप से प्रमाणित करना शुरू करता है। क्षमता अर्थात् वहन करने वाली क्रिया। वहन क्या करता है? या तो जागृति का या भ्रम का। जब जागृत हो गया तब भ्रम अपने आप विदा हो जाता है।

रहे, संघर्ष करते रहे, प्रताड़ित होते रहे।

इस परेशानी से छूटने का एकमात्र उपाय है जीवन और अस्तित्व को समझें और मानवीयतापूर्ण आचरण को समझें। मानव ही अस्तित्व में सर्वोच्च विकसित इकाई है शरीर के रूप में और जीवन के रूप में। जीवन अपने अस्तित्व को और जागृति को प्रमाणित करने के लिए शरीर को प्रयोग करता है। प्रयोग करने के समय में वह बराबर शरीर को जीवंत बनाये रखता है बाद में शरीर को ही जीवन मान लेता है फलस्वरूप भ्रमित होता है और प्रमाणित करने के लिए पुनः शरीर को संचालित करता है। इस ढंग से कई बार शरीर को छोड़ने से तो परेशान होने की बात है। इसमें पाप पुण्य नाम की कोई चीज नहीं होती है। समझदारी या नासमझी ही होती है। समझदारी परंपरा से ही आता है। समझदारी को परंपरा में ही पाना है। कोई एक व्यक्ति समझदार होने से संसार तर जायेगा ऐसा नहीं हो सकता। ऐसी कल्पना ने ही हमको भयभीत, निरीह बनाया। मानवीयतापूर्ण आचरण में हर मनुष्य अपने में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में जी पाता है। इस तरह जीने से हमारे तन, मन, धन का सदुपयोग, सुरक्षा करना भी बनता है और जब ये दोनों सजते हैं तो उस स्थिति में संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति भी अपने आप से प्रमाणित होता है। इस ढंग से मूल्य, चरित्र, नैतिकता के संयुक्त रूप में मनुष्य का आचरण व्याख्यायित होता है। तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा ही नैतिकता है। संबंधों को पहचानने की विधि से ही मूल्यों का निर्वाह होता है।

इस परेशानी से छूटने का एकमात्र उपाय है जीवन और अस्तित्व को समझें और मानवीयता पूर्ण आचरण को समझें। मानव ही अस्तित्व में सर्वोच्च विकसित इकाई है शरीर के रूप में और जीवन के रूप में। जीवन अपने अस्तित्व को और जागृति को प्रमाणित करने के लिए शरीर को प्रयोग करता है।

जैसे कोई भी आदमी अपने पिता के संबंध को, माता के संबंध को गुरु के संबंध को, पहचानते हैं। मूल्य (भाव) अपने आप बहने लगते हैं तो मूल्यों का निर्वाह होता है। जहाँ संबंधों को पहचानते नहीं हैं वहाँ कोई मूल्यों का बहाव होता नहीं है। उदाहरण रेल के डब्बे में कोई बैठा है एक अजनबी आता है तो उनका हाथ पैर अपने आप लंबा हो जाता है इच्छा होती है यहाँ कोई न बैठे। वहीं थोड़ी देर बाद कोई पहचान का आदमी आ जाता है तो अपने आप से उठकर खड़े हो जाते हैं उनको बैठा देते हैं इस तरह संबंधों की पहचान एक बड़ा काम है। संबंधों के बारे में अध्ययन प्रयोजन के आधार पर होता है। जैसे माँ का संबंध पोषण प्रधान रूपी प्रयोजन के आधार पर, पिता का संबंध संरक्षण प्रधान रूपी प्रयोजन के आधार पर अध्ययन किया जाता है। ये संबंध सभी पहचानने में आ जाये उसके बाद मनुष्य गलती नहीं करता। बिना संबंध पहचाने गलती करेगा ही।

वर्तमान राजकीय तंत्र, धर्म तंत्र को देखने से पता लगता है सब अपराधियों के लिए बना है। ये दोनों अपराधियों को तारने में अपने-अपने ढंग से लगे हैं। ये सब तंत्र मनुष्य को समझदारी दे नहीं पाया। हर मानव समझदार होना चाहता है। ईमानदार होना चाहता है। ईमानदारी का रास्ता दिखा नहीं पाये। हर आदमी जिम्मेदार होना चाहता है। जिम्मेदारी का प्रयोजन परंपरा में दे नहीं पाये। लोगों ने शुभ की कामना की है सबका शुभ हो, सबके परिवार हो, सबका मंगल हो, इस प्रकार की बातों को तो सब लोग दोहराए हैं। किन्तु कहने मात्र से, दोहराने मात्र से, तो रास्ता मिलता नहीं। जिस किताब

जहाँ संबंधों को पहचानते नहीं हैं वहाँ कोई मूल्यों का बहाव होता नहीं है। उदाहरण रेल के डब्बे में कोई बैठा है एक अजनबी आता है तो उनका हाथ पैर अपने आप लंबा हो जाता है इच्छा होती है यहाँ कोई न बैठे। वहीं थोड़ी देर बाद कोई पहचान का आदमी आ जाता है तो अपने आप से उठकर खड़े हो जाते हैं उनको बैठा देते हैं।

में लिखा रहता है सबका शुभ हो उसी में लिखा रहता है सारा संसार झूठा है और असली माँ-बाप ईश्वर है उन्हीं के शरण में जाना चाहिये। तो इससे कल्याण हुआ नहीं। असली माँ-बाप के पास जाने के बाद मानव रहा नहीं तो कल्याण किसका हुआ। इस सब बात से कोई प्रयोजन निकलता नहीं। समझदार होने पर ही आदमी का प्रयोजन निकलता है। सभी संबंधों में प्रयोजन निहित रहता ही है। क्या प्रयोजन है? तो समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को सफल बनाने के अर्थ में ही प्रयोजन है। सारे संबंधों का प्रयोजन इसी से जुड़ा रहता है इसमें जुड़ने से परंपरा बन जाती है। समझदारी की ही परंपरा होगी नासमझी की कोई परंपरा होगी नहीं। इसलिए अभी तक कोई परंपरा बनी नहीं। वर्तमान शिक्षा में जब व्यक्ति पढ़कर तैयार होता है स्वयं को सबसे बुद्धिमान मानता है। संसार को मूर्ख मानता है। ऐसे स्नातक हर वर्ष करोड़ों बनते हैं। एक-एक ऐसे स्नातक को कैसे समझदार बनाया जाये? कहां से इतने डाक्टर लाया जाये जो इनको ठीक कर सके।

सारा संसार झूठा है और असली माँ-बाप ईश्वर है उन्हीं के शरण में जाना चाहिये। तो इससे कल्याण हुआ नहीं। असली माँ-बाप के पास जाने के बाद मानव रहा नहीं तो कल्याण किसका हुआ। इस सब बात से कोई प्रयोजन निकलता नहीं। समझदार होने पर ही आदमी का प्रयोजन निकलता है।

स्वयं समझे बिना कोई स्वीकार करता नहीं। इसका गवाही मैं स्वयं हूँ। हमारे परिवार में वेदमूर्ति, बगल में वेदमूर्ति, पूरा गाँव में वेदमूर्ति किन्तु हमें परिवार के लोग वेद नहीं पढ़ा पाये क्योंकि हम पढ़ना नहीं चाहे। किन्तु, इस धरती पर समझदार हर मानव बनना चाहता है। इस आधार पर हर मनुष्य समझदार होने की पूर्ण संभावना है। इस प्रवृत्ति को देखकर ही इस अभियान को शुरू किया। हर मानव का समझदार बनाने का भी अरमान है इस सच्चाई के साथ

शुरूआत किये हैं। इस शुरूआत से मनुष्य को जो लोग समझ चुके हैं उनको राहत मिली है उनमें वे सब गुण पैदा हुए हैं जिन्हें हम मानवीयतापूर्ण के रूप में पहचानते हैं।

नैतिकता का मूल तत्व जो तन, मन, धन रूपी अर्थ को प्रयोजन के अर्थ में नियोजित करना है। जिसे सदुपयोग कहते हैं। सदुपयोग दो अर्थों में होता है - 1. सेवा और उत्पादन में तन, मन, धन का नियोजन। 2. संबंधों के साथ प्रयोजन को सफल बनाने के लिए तन, मन, धन का सदुपयोग।

जिसका सदुपयोग किया उसका सुरक्षा हो गया। जिसके लिये हम सदुपयोग किया अर्थ का उसका सुरक्षा हुआ। यही हमारा सदुपयोग और सुरक्षा का अर्थ है। समाधान के लिये, समृद्धि के लिये, वर्तमान में विश्वास रखने के अर्थ में व्यवस्था के लिये, सह-अस्तित्व के लिये जब हम इन चारों के लिये तन-मन-धन रूपी अर्थ को नियोजित करते हैं तो उसका सुरक्षा हुआ। फलस्वरूप हमारे धन का सदुपयोग हुआ। सदुपयोग हुये बिना सुरक्षा और सुरक्षा के बिना सदुपयोग होगा नहीं। सुरक्षा सदुपयोग सदा सदा के लिए शुभ होता है। सद्प्रवृत्तियों में हमारे तन, मन, धन को नियोजित करने की आवश्यकता बनी रहती है जो हमारे जागृति के अर्थ में है।

अस्तित्व में कोई समझदार इकाई हो सकती है तो वह मानव ही है। मानव, जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में प्रमाणित है। मानव शरीर की वंश परंपरा है। जीवन अस्तित्व सहज रूप में जीवन परमाणु के रूप में विद्यमान है इसमें मनुष्य का कोई योगदान नहीं है।

नैतिकता का मूल तत्व जो तन, मन, धन रूपी अर्थ को प्रयोजन के अर्थ में नियोजित करना है। जिसे सदुपयोग कहते हैं। सदुपयोग दो अर्थों में होता है - 1. सेवा और उत्पादन में तन, मन, धन का नियोजन। 2. संबंधों के साथ प्रयोजन को सफल बनाने के लिए तन, मन, धन का सदुपयोग।

शरीर में मानव परंपरा का योगदान है। यही व्यवस्था है। जीवन और शरीर के संयोग की आवश्यकता केवल जीवन अपनी जागृति को प्रमाणित करने के अर्थ में ही है और जीव शरीरों में समझदारी प्रमाणित करने की व्यवस्था नहीं है। इसलिये मानव संस्कारानुषंगीय इकाई के रूप में समझ में आता है। अस्तित्व में मानव को छोड़कर तीनों अवस्थाएँ परस्पर पूरक है। मानव के पूरक होने की आवश्यकता हो गई है। पूरकता के रूप में ही मानव का व्यवस्था में जीना बन पाता है यह व्यक्तिवाद, भोगवाद के आधार पर कभी नहीं बन पाता है। विगत के दोनों चिंतनों भौतिकवाद और विरक्तिवाद से मानव व्यक्तिवादी हो गया। भौतिकवादी विधि से व्यक्ति होता है। फलस्वरूप व्यक्तिवादी होता है। विरक्तिवादी तो व्यक्तिवादी होता ही है। इस प्रकार ये दोनों विचार से समाज बनने का सूत्र निकला नहीं बल्कि समाज विरोधी होना ही हुआ। जबकि आदमी समाज में जीना चाहता है। सह-अस्तित्व में जीना चाहता है। समृद्धि पूर्वक जीना चाहता है। समाधान पूर्वक जीना चाहता है। तीनों विचारों (सहअस्तित्व, समृद्धि और समाधान) प्रयोजनों को पूरा करना मनुष्य की जिम्मेदारी है।

अस्तित्व में कोई समझदार इकाई हो सकती है तो वह मानव ही है। मानव, जीवन और शरीर के संयुक्त रूप से प्रमाणित है। मानव शरीर की वंश परंपरा है। जीवन अस्तित्व सहज रूप में जीवन परमाणु के रूप में विद्यमान है इसमें मनुष्य का कोई योगदान नहीं है। शरीर में मानव परंपरा का योगदान है। यही व्यवस्था है।

समझदारी के बाद जिम्मेदारी आ ही जाती है। जब जिम्मेदारी के पास जाते हैं तो स्वाभाविक रूप में हम परिवार मानव हो जाते हैं, सामाजिक हो जाते हैं। फलस्वरूप हम सार्वभौम होते हुए प्रमाणित होते हैं। इस वैभवशाली परंपरा की आवश्यकता है। आशा के रूप में हर व्यक्ति व्यवस्था चाहता है। आकांक्षा के रूप में भी व्यवस्था चाहता है। हमारे अनुसार इच्छा के रूप में भी व्यवस्था चाहता है किन्तु इच्छा

में उसकी वरीयता क्रम नीचे है, इसके ऊपर और बहुत सी चीजें हैं। इसलिए इच्छा में होते हुए भी व्यवस्था की तीव्र इच्छा नहीं हो पाती। फलस्वरूप आदमी समर्पित होने में असमर्थ रहता है। दूसरे किसी बात में वह विवश हो जाता है। तो क्या किया जाए? जो तत्काल समझने को तैयार हैं उन्हीं को पारंगत बनाया जाए। उन्हीं से शिक्षण संस्थाओं से मानवीय शिक्षा को व्यवहारान्वयन किया जाए, बच्चों में संस्कार डाला जाए। बच्चों में संस्कार डालने से घर परिवार में स्वभाविक रूप में परिवर्तन होना ही है। इस तरह शिक्षा का मानवीकरण की आवश्यकता है जो दूसरी योजना है।

पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था की इकाईयां मानव के लिए पूरक हैं। किन्तु मानव उनके लिये पूरक होना विचाराधीन है। उसको पूरा करने की आवश्यकता है। तभी मानव के व्यवस्था में जीने का प्रमाण मिल पायेगा।

जीवन का लक्ष्य है सुख, शांति, संतोष, आनंद। जीवन लक्ष्य सफल होता है तो मानव लक्ष्य सफल होता है। मानव लक्ष्य है समाधान, समृद्धि, अभय व सह-अस्तित्व। मानव लक्ष्य पूरा होता है तो जीवन लक्ष्य पूरा होता है। समाधान = सुख। जहाँ-जहाँ हम समाधानित रहते हैं वहाँ-वहाँ सुख का अनुभव करते हैं। जहाँ पर समाधानित नहीं है वहाँ हम पीड़ित होते हैं। उसके बाद परिवार में हम जीते हैं प्रमाणित होने की स्थिति में शांति का अनुभव करते हैं। व्यवस्था में जीने के अर्थ में संतोष का अनुभव करते हैं। अपनी समझदारी को प्रमाणित करने के अर्थ में आनन्द का अनुभव

अस्तित्व में मानव को छोड़कर तीनों अवस्थाएँ परस्पर पूरक हैं। मानव के पूरक होने की आवश्यकता हो गई है। पूरकता के रूप में ही मानव का व्यवस्था में जीना बन पाता है यह व्यक्तिवाद, भोगवाद के आधार पर कभी नहीं बन पाता है। विगत के दोनों चिंतनों भौतिकवाद और विरक्तिवाद से मानव व्यक्तिवादी हो गया।

करते हैं। इस प्रकार, इसमें हम प्रमाणित हो पाते हैं तो परंपरा में समझदारी बहती रहेगी। इस क्रम में हम सुख, शांति, संतोष, आनन्द को अनुभव करने के योग्य हैं।

जीवन अक्षय बल, अक्षय शक्ति सम्पन्न है। इस विधि से समाधान के बाद समाधान को प्रकाशित, प्रमाणित निरंतर करते ही रहते हैं और जीवन तृप्त बना ही रहता है। 'जीवन' स्थिति में बल व गति में शक्ति है। गति में होने वाली क्रियाएं एक दूसरे के परस्परता में प्रमाणित होते हैं। स्थिति में रहने पर क्रियाओं का अनुभव होता है। हम जितने भी आस्वादन किये इससे हम तृप्त हुये कि नहीं ये हमको पता लगता है। जितना हम तुलन किया उससे हमको तथ्य मिला कि नहीं। जितना हम साक्षात्कार (चिंतन) किया, बोध किया, अनुभव किया इससे तथ्य मिला कि नहीं इस बारे में हम निरंतर परीक्षण करते रहते हैं। परीक्षण करना ही होगा, करेंगे ही, दूसरा कोई रास्ता नहीं है। इन पाँचों अवस्थाओं में तृप्ति ही कुल मिलाकर सतत सुखी होने का रास्ता बनता है। इसी को सुख, शांति, संतोष, आनन्द कहते हैं। इन्हीं पाँच अवस्थाओं में प्रमाणित होने से मनुष्य का वैभव स्वयं में राज्य के रूप में प्रतिष्ठित रहता है। मनुष्य का मानवीयता से परिपूर्ण होकर वैभवित होना ही राज्य का मतलब है। व्यवस्था में जीना ही राज्य है, स्वराज्य है। स्वयं प्रेरित होकर व्यवस्था में जीना ही स्वराज्य है। इस प्रकार से, मानवीयतापूर्ण आचरण ही इसकी व्याख्या है। परिवार में, समाज में, प्रकृति में, व्यवस्था में जो संबंध है उसको कैसा सार्थक बनायेगा यही मनुष्य की जागृति का वैभव है। संबंध और मूल्यों को सार्थक बनाने के क्रम में ही हम वर्तमान में विश्वास कर पाते हैं।

जीवन का लक्ष्य है सुख, शांति, संतोष, आनंद। जीवन लक्ष्य सफल होता है तो मानव लक्ष्य सफल होता है। मानव लक्ष्य है समाधान, समृद्धि, अभय व सह-अस्तित्व। मानव लक्ष्य पूरा होता है तो जीवन लक्ष्य पूरा होता है। समाधान = सुख। जहाँ-जहाँ हम समाधानित रहते हैं वहाँ-वहाँ सुख का अनुभव करते हैं।

संबंधों को पहचानते नहीं है तो वर्तमान में जीते नहीं है तो विगत में जाते हैं विगत वर्तमान होता नहीं। (विगत के साथ जीना बनता नहीं) भविष्य को सोचते हैं, भविष्य भी वर्तमान होता नहीं। इस तरह से आदमी को कहीं ठौर मिलता नहीं। फलस्वरूप भटकता रहता है। भटकना कोई चाहता नहीं है। परंपरा में दिशा और लक्ष्य निर्देश की व्यवस्था है नहीं। हर मनुष्य समझदार होकर प्रमाणित हो सकता है। हर मनुष्य के आचरण में आ सकता है और मनुष्य मूल्यांकित हो पाता है। मनुष्य को समझदारी को सफल बनाना है यही उसका वैभव है, यही मनुष्य का ऐश्वर्य है इसी ऐश्वर्य के साथ मनुष्य अपनी परंपरा को निरंतर सुखमय बना सकता है। सभी पशु संसार, जीव संसार, वनस्पति संसार, पदार्थ संसार के साथ संतुलनपूर्वक व्यवहार कर सकता है उससे जो पूरकता है उसके लिए स्वयं कृतज्ञ होकर उसका उपयोग, सदुपयोग कर सकता है। प्रयोजनशील बन सकता है।

मनुष्य के साथ तो संबंध मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति होती है। तृप्ति हमारा वर है, अतृप्ति हमारा वर नहीं है। हर व्यक्ति तृप्त होने के आसार में समाधान, समृद्धि, वर्तमान में विश्वास और व्यवस्था में जीना सह-अस्तित्व को प्रमाणित करना ही है। सत्य का स्वरूप इस ढंग से आया अस्तित्व ही परम सत्य है, निरंतर रहने वाली वस्तु अस्तित्व ही है और अस्तित्व, सह-अस्तित्व स्वरूप है, सह-अस्तित्व ही निरंतर प्रभावशील है। फलस्वरूप विकास होता है, विकास क्रम होता है। विकसित हो जाते हैं जीवन्त हो जाते हैं। विकासक्रम में भौतिक-रासायनिक वस्तु के रूप में निरंतर कार्यरत है। जीवन कितनी संख्या होना है इसका निश्चयन भी अस्तित्व सहज विधि से आता है मानव सहज विधि से आता नहीं। अस्तित्व स्वयं

परिवार में, समाज में, प्रकृति में, व्यवस्था में जो संबंध है उसको कैसा सार्थक बनायेगा यही मनुष्य की जागृति का वैभव है। संबंध और मूल्यों को सार्थक बनाने के क्रम में ही हम वर्तमान में विश्वास कर पाते हैं। संबंधों को पहचानते नहीं है तो वर्तमान में जीते नहीं है तो विगत में जाते हैं विगत वर्तमान होता नहीं।

अपनी विधि से चारों अवस्थाओं को प्रकाशित कर चुका है। इसमें मनुष्य का कोई योगदान नहीं है। मनुष्य स्वयं को अन्य प्रकृति के पूरक होने के प्रमाण के रूप में प्रमाणित कर नहीं पाया बल्कि उल्टे शोषण करता रहा है। शोषण से मनुष्य कैसे सुखी होने की कामना किया, यह सोचने का मुद्दा है। शोषण से सुखी होने के बारे में सब राज्य, सब समुदाय, सब धर्म, अधिकांश परिवार सोचते हैं। जहाँ तक राज्य और समुदाय की मान्यता है शोषण पूर्वक ही सुखी हो सकता है। आज तक यही अंतिम बात है और विज्ञान भी इसका समर्थक है कि संघर्ष और शोषण पूर्वक ही मनुष्य अपने अस्तित्व को बचाये रख सकता है। अस्तित्व से यहाँ मतलब अपनी जाति, समुदाय से है। संघर्ष का मतलब है जिसकी लाठी उसकी भैंस। संघर्ष करना ही विकास माना जाता है। जो देश ज्यादा युद्ध कर सकता है, ज्यादा व्यापार बुद्धि का उपयोग कर पाते हैं, ज्यादा शोषण कर सकता है उसे विकसित देश कहा जाता है। जबकि विकसित देश वही है जो जागृत हो गया है। व्यवस्था में है, समाधानित है, समृद्ध है, अपने में विश्वास करता है, सह-अस्तित्व को समझता है। जीवन, जीवन को

समझने वाला और जीवन अस्तित्व को समझने वाला तरीका भिन्न है। जहाँ तक भौतिक रासायनिक वस्तुएं हैं इनको हम प्रयोगपूर्वक उपयोगिता के आधार पर पहचान लेते हैं। उपयोगिता को हम सामान्य आंकाक्षा और महात्वाकांक्षा के रूप में पहचानते हैं। सामान्य आंकाक्षा है आहार, आवास, अलंकार (साधन)। महात्वाकांक्षा है - दूरगमन, दूरश्रवण, दूरदर्शन। इनमें से अधिकांश भाग तो पहचान लिए गये हैं उत्पादन भी कर लिए हैं। इसको सर्वसुलभ करने का प्रयत्न भी व्यापार विधि से किए हैं। व्यापार विधि में लाभ की प्रतीक्षा रहती ही

मनुष्य स्वयं को अन्य प्रकृति के पूरक होने के प्रमाण के रूप में प्रमाणित कर नहीं पाया बल्कि उल्टे शोषण करता रहा है। शोषण से मनुष्य कैसे सुखी होने की कामना किया, यह सोचने का मुद्दा है। शोषण से सुखी होने के बारे में सब राज्य, सब समुदाय, सब धर्म, अधिकांश परिवार सोचते हैं। जहाँ तक राज्य और समुदाय की मान्यता है शोषण पूर्वक ही सुखी हो सकता है।

है ।

जीवन का विश्लेषण क्रिया के आधार पर हम यह पहचान पाते हैं कि हमको किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता है। फिर उन आवश्यकताओं को पहचान कर हम उत्पादन करते हैं और समृद्धि का अनुभव करते हैं। जैसे ही हम समृद्धि का अनुभव करते हैं वैसे ही हम व्यवस्था में जीना शुरू कर देते हैं इसलिए हमारे विद्यार्थियों को सर्वप्रथम स्वायत्त बनाने की जरूरत है और उसके बाद परिवार में प्रमाणित होने योग्य प्रवृत्ति और फिर समग्र व्यवस्था में जीने की आवश्यकता है। इन तीनों स्थितियों में प्रमाणित होना मनुष्य का सौभाग्य है। ऐसा सौभाग्यशाली बनने के लिए मनुष्य की स्वयंस्फूर्त आवश्यकता ही एकमात्र आधार है। यदि ऐसी आवश्यकता बनती है तो इस प्रस्ताव को मनोयोगपूर्वक, अध्ययन पूर्वक अपने को प्रमाणित करना सहज है।

तो हम समझने की कोशिश किए, समझदारी क्या है? समझने वाला कौन है समझदारी के लिए वस्तु क्या है? समझने वाला वस्तु 'जीवन' ही है। समझने के लिए वस्तु 'अस्तित्व' है, 'जीवन' है एवं 'मानवीयतापूर्ण आचरण' ही है। अस्तित्व को समझने के क्रम में अस्तित्व में विकास को समझना है। रासायनिक और भौतिक रचना, विरचना को समझना है। रासायनिक और भौतिक रचना, विरचना पदार्थावस्था और प्राणावस्था के रूप में अस्तित्व में विद्यमान है। ये सभी वस्तुएं एक स्वरूप में होकर दूसरे स्वरूप में परिवर्तित होते रहते हैं जैसे पेड़ पौधे कुछ काल पश्चात स्वयं सूखकर मिट्टी बन जाते हैं। इसी का नाम परिवर्तनशीलता है। यह

उपयोगिता को हम सामान्य आकांक्षा और महात्वाकांक्षा के रूप में पहचानते हैं। सामान्य आकांक्षा है आहार, आवास, अलंकार (साधन)। महात्वाकांक्षा है - दूरगमन, दूरश्रवण, दूरदर्शन। इनमें से अधिकांश भाग तो पहचान लिए गये हैं उत्पादन भी कर लिए हैं। इसको सर्वसुलभ करने का प्रयत्न भी व्यापार विधि से किए हैं।

परिवर्तन भौतिक रासायनिक पदार्थों में निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इसी तरह मानव एवं पशु शरीर रचना गर्भाशय में रचित होते हैं एवं कुछ काल पश्चात विरचित होकर मिट्टी, पानी, हवा में परिवर्तित हो जाते हैं।

इसके बाद समझने वाली वस्तु जीवन हमेशा एक सा रहता है। मनुष्य शरीर में समझने वाली वस्तु केवल जीवन ही है। समझने के रूप में अस्तित्व को सह-अस्तित्व के रूप में ही समझा गया। सह-अस्तित्व के नजरिए में ही संपूर्ण परिस्थिति में हम व्यवस्थापूर्वक जी पाते हैं। व्यवस्था में जीना ही मानव का लक्ष्य है, व्यवस्था में जीना ही सुख है। अव्यवस्था में जीकर 'जीवन' समस्या से पीड़ित होता है। फलस्वरूप समाधान की खोज स्वाभाविक है जीवन में निरंतर अनुसंधान होता है। जीवन ही नहीं परमाणु में भी अनुसंधान होता रहता है। यही परिवर्तन के लिए मूलतत्त्व है। हर जगह सह-अस्तित्व में होने की प्रवृत्ति है। परमाणु अंश भी सह-अस्तित्व में होने की प्रवृत्तिवश ही परमाणु के रूप में और परमाणु अणु के रूप में गठित होते रहते हैं। अणु भी इसी प्रवृत्तिवश अणुपिण्डों के रूप में गठित होते रहते हैं। इस तरह से अनंत ग्रह, गोल अस्तित्व में होने की बात आदमी को समझ में आती है। प्रकृति में विभिन्नता का मूल रूप परमाणु में निहित परमाणु अंशों का संख्या भेद है। इन विविध वस्तुओं की विविधता के आधार पर, स्थापना के आधार पर ही इनसे रचित रचनाओं में विविधता का होना पाया जाता है। जैसे वनस्पतियों में अनेक प्रकार की रचनाएं हैं। जिन-जिन रचनाओं से रचित वस्तुएं

मनुष्य शरीर में समझने वाली वस्तु केवल जीवन ही है। समझने के रूप में अस्तित्व को सह-अस्तित्व के रूप में ही समझा गया। सह-अस्तित्व के नजरिए में ही संपूर्ण परिस्थिति में हम व्यवस्था-पूर्वक जी पाते हैं। व्यवस्था में जीना ही मानव का लक्ष्य है, व्यवस्था में जीना ही सुख है। अव्यवस्था में जीकर 'जीवन' समस्या से पीड़ित होता है।

हैं वे अपने स्वाभाविक रूप में अपने स्वरूप में वैभवित है। उसका एक भौतिक प्रयोजन है जो सह-अस्तित्व में भागीदारी ही है। रचना के मूल में जो द्रव्य है वे भी सह-अस्तित्व में होने की ही महिमा है। इस महिमा के आधार पर संपूर्ण अस्तित्व विद्यमान है, प्रमाणित है, प्रकाशित है। इस अस्तित्व में ही मानव एक भाग है। सह-अस्तित्व में मानव अविभाज्य है। सह-अस्तित्व को छोड़कर मानव कहीं भाग नहीं सकता। भागने की जितनी कोशिश किया उतना ही परेशान हुआ। हर आदमी अपने में समाधान चाहता है उसके लिए हर आदमी शोध करता है। हर व्यक्ति व्यवस्था शोध करने का अधिकारी है। हर व्यक्ति जब शोधपूर्वक ही जीता है तब इसमें व्यक्ति को कर्म स्वतंत्रता अपने आप समझ में आता है। शोध का उद्देश्य स्पष्ट है, जीने का उद्देश्य स्पष्ट है। जीने का उद्देश्य एक ही स्थान पर धुवीकृत होता है कि मनुष्य सुख से जीना चाहता है। सुखी होने के लिए प्रक्रिया एक ही है, जीवन का उद्देश्य, मानव का उद्देश्य सम्पन्न होना चाहिए। समझदारी से जीवन का उद्देश्य सम्पन्न होना चाहिए। समझदारी से जीवन का उद्देश्य पूरा होता है। जीवन तृप्त होता है और तृप्त जीवन ही मानव के उद्देश्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को बनाये रखने में समर्थ होता है। यही व्यवस्था में जीने का प्रमाण है। व्यवस्था में जीता है तो चारों लक्ष्य उपलब्ध रहते हैं। ऐसी मानव परंपरा एक दूसरे के लिए उपकारी होती है फलस्वरूप सह-अस्तित्व का अर्थ सार्थक हो पाता है। सह-अस्तित्व को बनाये रखना ही व्यवस्था है। सह-अस्तित्व के विपरीत जब भी कुछ होता है

रचना के मूल में जो द्रव्य है वे भी सह-अस्तित्व में होने की ही महिमा है। इस महिमा के आधार पर संपूर्ण अस्तित्व विद्यमान है, प्रमाणित है, प्रकाशित है। इस अस्तित्व में ही मानव एक भाग है। सह अस्तित्व में मानव अविभाज्य है। सह अस्तित्व को छोड़कर मानव कहीं भाग नहीं सकता। भागने की जितनी कोशिश किया उतना ही परेशान हुआ।

तो व्यवस्था में गड़बड़ी होती है। मनुष्य कर्म स्वतंत्रता और कल्पनाशीलता वश कुछ भी गड़बड़ कर देता है। जैसा धरती को बहुत तंग किया गया। ये पता नहीं था कि इस गड़बड़ी से क्या परेशानी हो सकती है जब पता चला तो उसका उपाय नहीं रह गया। कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता वश ही मनुष्य हमेशा अनुसंधानरत रहता है। शोध और अनुसंधान तभी सार्थक होता है जब वह व्यवस्था के लिए हो, समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के लिए हो। समझदारी से आदमी -

1. स्वयं में विश्वास
2. श्रेष्ठता का सम्मान
3. प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन
4. व्यवहार में सामाजिक
5. व्यवसाय में स्वावलंबी हो जाता है।

इनको सद्गुण कहा जा सकता है। इन सद्गुणों के साथ मानव सामाजिक होता है। समझदारी को प्रमाणित करना ही विद्वता है। विद्वान जो कुछ भी है अस्तित्व सहज (वर्तमान) विद्यमान मानव ही होता है। हर एक इकाई में अपने में शोध होता रहता है लेकिन विद्वता की बात केवल मानव में ही होती है।

अभी चार क्रियायें मानव में बतायी गयी जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना। इनमें से पहचानना, निर्वाह करना हर वस्तु में समाहित है। हर वस्तु दूसरी वस्तु को पहचान रही है। तभी निर्वाह कर रही है। एक परमाणु अंश भी दूसरे को पहचानता है फलस्वरूप वह व्यवस्था में रहते हैं। एक दूसरे के साथ रह पाते हैं, कार्य कर पाते हैं। फलस्वरूप सह-अस्तित्व में प्रकाशित हो पाते हैं।

मनुष्य कर्म स्वतंत्रता और कल्पनाशीलता वश कुछ भी गड़बड़ कर देता है। जैसा धरती को बहुत तंग किया गया। ये पता नहीं था कि इस गड़बड़ी से क्या परेशानी हो सकती है जब पता चला तो उसका उपाय नहीं रह गया। कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता वश ही मनुष्य हमेशा अनुसंधानरत रहता है।

इसी प्रकार अणु से लेकर ग्रह गोल एक दूसरे को पहचानते हैं और निर्वाह करते हैं। इस ढंग से सभी पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था भी एक दूसरे को पहचानते हैं और निर्वाह करते हैं इसका प्रमाण भी प्रकृति में पूरकता विधि से स्पष्ट होता है। मनुष्य केवल पहचानने और निर्वाह करने में तृप्त नहीं हुआ और इसमें शंकाएं पैदा हुईं। मानव के साथ दो क्रियाएं और जुड़ गयीं जानना, मानना। मानव जानने, मानने की क्रिया के आधार पर ही पहचानने, निर्वाह करने से आश्वस्त होता है। प्रयोजनों का सार्थकता का ही जानना, मानना होता है। प्रयोजनों को जानने मानने के क्रम में ही मानव सामाजिक हो पाता है। बिना जाने माने सामाजिक हो नहीं पाता है सह-अस्तित्व प्रमाणित होता नहीं है। मनुष्य की बहुत बड़ी दरिद्रता का कारण यह भी है कि जानने मानने का अवसर रहते हुए भी जानना, मानना नहीं हुआ। मानव इस स्थिति में स्वयं दरिद्र रहता है औरों को भी दरिद्र बनाता है। मानव स्वयं अपनी दरिद्रतावश ही धरती को दरिद्र बनाया है। मैं समझता हूँ जो जानने मानने वाला भाग है उसको प्रखर बनाया जाना चाहिए। हर व्यक्ति में इस प्रखरता की संभावना है। हर व्यक्ति में इस प्रखरता की आवश्यकता है यह समीचीन है। समझदारी को प्रमाणित करना और परंपरा के रूप में प्रवाहित करना ही विद्या का मतलब है।

जीवन की क्रियाओं को मूलतः पाँच भागों में देख पाते हैं। हर भाग में दो-दो क्रियाएँ होती हैं स्थिति और गति के रूप में। जैसे हर जीवन में 'आशा' नाम की चीज होती है जिसमें दो क्रियाएँ होती

इसी प्रकार अणु से लेकर ग्रह गोल एक दूसरे को पहचानते हैं और निर्वाह करते हैं। इस ढंग से सभी पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था भी एक दूसरे को पहचानते हैं और निर्वाह करते हैं इसका प्रमाण भी प्रकृति में पूरकता विधि से स्पष्ट होता है। मनुष्य केवल पहचानने और निर्वाह करने में तृप्त नहीं हुआ और इसमें शंकाएं पैदा हुईं।

है चयन और आस्वादन। आस्वादन के लिये क्या चुनते हैं यह एक चयन क्रिया है। आस्वादन करते हैं यह भी एक क्रिया है ये दोनों जहाँ होती है उस भाग को मन कहते हैं। चयन क्रिया में हमारे आस्वादन के लिये क्या क्या चीज चाहिये मनुष्य तमाम प्रकार की परिकल्पना किया है और तमाम प्रकार की चीजें इकट्ठा किया है और इकट्ठा करने में संलग्न है। हमने अभी तक सुविधा संग्रह के लिये इकट्ठा किया है। उसका कारण है कि सुविधा संग्रह के प्रयोजन को जानने-मानने के लिए ये हम जितना पीछे रहे हैं सुविधा संग्रह के लिये उतना ही विवश होते गये हैं। सुविधा संग्रह में कहीं तृप्ति बिन्दु नहीं मिला। जबकि इसके व्यवहारिक प्रयोजन को समझने पर आता है कि यह शरीर के पोषण-संरक्षण के लिये आवास, आहार, अलंकार (साधन) की जरूरत के रूप में है। समाज गति के लिये दूरगमन, दूरश्रवण, दूरदर्शन की आवश्यकता स्पष्ट होती है। ये सभी चीजें उपलब्ध हो गई हैं और इससे मानव तृप्त नहीं हुआ। यह एक भारी विडंबना की बात है।

मनुष्य तमाम प्रकार की परिकल्पना किया है और तमाम प्रकार की चीजें इकट्ठा किया है और इकट्ठा करने में संलग्न है। हमने अभी तक सुविधा संग्रह के लिये इकट्ठा किया है। उसका कारण है कि सुविधा संग्रह के प्रयोजन को जानने-मानने के लिए ये हम जितना पीछे रहे हैं सुविधा संग्रह के लिये उतना ही विवश होते गये हैं। सुविधा संग्रह में कहीं तृप्ति बिन्दु नहीं मिला।

जीवन की और दो क्रियाओं 'विश्लेषण' और 'तुलन' हैं। विश्लेषण क्रिया को जीवन अपने बलबूते पर जो कुछ भी हो सकता है करता ही है। तमाम विश्लेषणों में प्रयोजनों को ही पहचानने की बात आती है। प्रयोजन मूलतः समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व पूर्वक जी कर प्रमाणित करना है। इसके विपरीत ले जायें तो भोग, अतिभोग जहाँ मनुष्य कहीं टिक नहीं पायेगा।

अभी विज्ञान निष्कर्ष निकालता है सभी मनुष्य कुछ देर में मर जायेंगे और धरती नष्ट हो जायेगी। वह हो ही जाना है। धरती की विधि से सोचे तो धरती के सर्व-समृद्ध होने के पश्चात ही मानव आवास के लायक होने के बाद धरती पर मानव का अवतरण हुआ। मनुष्य को शनैः-शनैः जागृत होने का अवसर प्रदान किया। मनुष्य जागृत होने के स्थान पर भोग-अतिभोग की ओर अग्रसर हुआ। भोग-अतिभोग को दिशा बनाने के कारण मनुष्य सुविधा-संग्रह के अंतहीन सिलसिले की ओर अग्रसर हुए। सबकी सुविधा संग्रह की हविश पूरा करने की सामग्री इस धरती में नहीं है। इसलिये कहीं ना कहीं यह हविश आदमी को डुबायेगी। इसलिये सारे सुविधा संग्रह को प्रयोजन सम्मत करना जरूरी है। प्रयोजन सम्मत करते हैं तो शरीर पोषण-संरक्षण और समाज गति ही निकलता है। समाज गति की ओर जाते हैं तो अखण्ड समाज में भागीदारी करना, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करना ही निकलता है। इन प्रवर्तनों में आदमी जीने जाता है तो सुखी होकर जीना बनता है। इस विधि से अस्तित्व में जागृति को प्रमाणित करना ही जीवन का उद्देश्य है। इसमें अद्भुत स्रोत सफलता का आधार यही है कि हर व्यक्ति व्यवस्था में जीना चाहता है। व्यवस्था का मूल तत्व है भय और प्रलोभन के स्थान पर मूल्य, मूल्यांकन और उभयतृप्ति को पहचानना जिसके लिए समझदारी को विकसित करने की आवश्यकता है।

भोग-अतिभोग को दिशा बनाने के कारण मनुष्य सुविधा-संग्रह के अंतहीन सिलसिले की ओर अग्रसर हुए। सबकी सुविधा संग्रह की हविश पूरा करने की सामग्री इस धरती में नहीं है। इसलिये कहीं ना कहीं यह हविश आदमी को डुबायेगी। इसलिये सारे सुविधा संग्रह को प्रयोजन सम्मत करना जरूरी है।

जीवन का स्वरूप

मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि, आत्मा का अविभाज्य स्वरूप 'जीवन' है ये कभी अलग-अलग होते नहीं हैं।

मन का दो कार्य रूप है - चयन, आस्वादन। वृत्ति का दो कार्यरूप है - विश्लेषण, तुलन। चित्त का दो कार्यरूप है - चित्रण, चिंतन। बुद्धि का दो कार्यरूप है - ऋतम्भरा (संकल्प), बोध। आत्मा का दो कार्यरूप है - प्रमाणिकता, अनुभव।

ये दस क्रियाओं के रूप में हर जीवन सतत कार्यरत है ये दस क्रियाएँ करते हुये जीवन भ्रम या जागृति के रूप में प्रमाणित होते हुये पाया जाता है। भ्रमित अवस्था में संवेदनशीलता से अनुप्राणित रहता है और दस क्रियाओं में से साढ़े चार क्रिया ही कार्यरत रहते हैं। बाकी क्रियाओं को समझने की वस्तु रहती नहीं है इसलिये जीवन में अंतर्विरोध बना ही रहता है। ये साढ़े चार क्रियाएँ हैं - चयन, आस्वादन, विश्लेषण, चित्रण एवं आधा तुलन। चयन, आस्वादन संवेदनशीलता के आधार पर होती ही है। हाथ, पैर, नाक, कान, आँख जीभ आदि को अच्छे लगने वाली वस्तु को अपनाते हैं और खराब लगने वाली वस्तु को छोड़ देते हैं। संवेदनशीलता के पक्ष में ही तुलन नाम की क्रिया करता है प्रिय, हित, लाभ के रूप में। इसी के अर्थ में विश्लेषण कर लेता है और इसके लिये चित्रण क्रिया को भी संपादित कर लेते हैं। कुल मिलाकर इंद्रिय-संवेदना को ही जीवन मानते हुये हम जीने के लिये तत्पर हो गये हैं। इसी का नाम है 'भ्रमित जीवन'। इसका अंतर्विरोध होता ही रहता है। ये ठीक है या गलत है या ज्यादा है कम है, इस तरह का सारा संकट

कुल मिलाकर के इंद्रिय-संवेदना को ही जीवन मानते हुये हम जीने के लिये तत्पर हो गये हैं। इसी का नाम है 'भ्रमित जीवन'। इसका अंतः-विरोध होता ही रहता है। ये ठीक है या गलत है या ज्यादा है कम है, इस तरह का सारा संकट मनुष्य के सामने रखा ही रहता है। मानसिकता आदिमानव की ही है।

मनुष्य के सामने रखा ही रहता है। मानसिकता आदिमानव जैसी ही है। वस्तुएँ ज्यादा हो गई है। मानव मानसिकता के लिये और जो साढ़े पांच क्रियायें हैं उन्हें जागृत होने की आवश्यकता है वह समझदारी से जागृत होती है।

संवदेनाओं को पहचानने निर्वाह करने के लिए साढ़े चार क्रियायें पर्याप्त हैं, इसी में मनुष्य पशुवत जीता भी है। मानव जैसा जीना केवल साढ़े चार क्रियाओं से बनता नहीं। उससे संतुष्टि होती नहीं। अब जो मूल मुद्दा जीवन की सभी दसों क्रियाओं को व्यवहार में प्रमाणित करना ही जागृति है। थोड़े भाग को प्रमाणित करने से जागृति वाली बात बनती नहीं है। जैसे शरीर स्वस्थ है तो पांचों ज्ञानेन्द्रिय और पांचों कर्मेन्द्रिय सटीकता से एक दूसरे के तालमेल से कार्य करते रहते हैं। यदि इसमें से हाथ काम न करता हो पैर न काम करता हो लूला-लंगड़ा ही कहेंगे। उसको स्वस्थ आदमी कहेंगे नहीं।

जागृति तब तक नहीं हो सकती जब तक जानने मानने की क्रिया को हम पहचानने, निर्वाह करने की क्रिया के साथ जोड़ नहीं पायेंगे। अभी तक संवदेनाओं को पहचानने निर्वाह करने की क्रिया विधि के साथ ये साढ़े चार क्रियाओं को हम सब प्रमाणित कर दिये, आगे की क्रिया व्यवहार में प्रमाणित होती है यही जागृति का आधार है। यह जानने मानने की विधि से ही होगी। मनुष्येत्तर संसार पहचानने निर्वाह करने के क्रम में नियमित रहता है, नियम के अनुसार कार्य करता है इस विधि से व्यवस्था है।

जागृति तब तक नहीं हो सकती जब तक जानने मानने की क्रिया को हम पहचानने, निर्वाह करने की क्रिया के साथ जोड़ नहीं पायेंगे। अभी तक संवदेनाओं को पहचानने निर्वाह करने की क्रिया विधि के साथ ये साढ़े चार क्रियाओं को हम सब प्रमाणित कर दिये, आगे की क्रिया व्यवहार में प्रमाणित होती है यही जागृति का आधार है।

संवेदनशीलता पूर्वक जीने की जो पराकाष्ठा है वह जीव संसार में पूरा हो जाता है। यदि संवेदनशीलता में ही अंतिम मंजिल होती तो मनुष्य के होने की जरूरत ही नहीं बनती है। अस्तित्व में निष्प्रयोजन की कोई स्थिति नहीं है। पूरे अस्तित्व में, सम्पूर्णता में एक तालमेल, एक सूत्रता, एक संगीतमयता पूर्वक व्यवस्था का स्वरूप है। हर गति, हर स्थिति, हर अवस्था एक सार्थकता सूत्र से जुड़ा ही है। सार्थकता क्या है व्यवस्था में होना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना। जीवन जब जागृत होता है अनुभव और प्रमाणिकता मूलक हमारा बोध संकल्प होता है और उसी के अनुरूप में चिंतन, चित्रण सम्पादित करना शुरू करता है। उसी आधार पर तुलन, विश्लेषण और चयन, आस्वादन होता है। अभी हम संवेदनशीलता को सर्वोपरि मूल्यवान मान करके हर विचार हर योजना को तैयार करते हैं। जबकि जागृति में मूल्य और मूल्यांकन ही आता है। यही जागृति का व्यवहारिक स्वरूप है। संवेदन-शीलता मूलक विधि से हमने जीने की कला को विकसित करने का काम पूरा कर लिया है। इस विधि से जीने के लिए जो जरूरत की वस्तुएँ हैं वे मनुष्य को छोड़कर बाकी संसार है। जिसमें जीव, वनस्पति और पदार्थ संसार है। इन तीनों को आदमी ने कैसा उपयोग किया, आप सबको विदित है। इसमें कैसे ज्यादा से ज्यादा सफल हुए हैं ये भी विदित है। हम ये सब सफलता के लिए किसी को विफल होने की बात करते हैं तो असंतुलन होता है। हमने अभी तक जो सुविधा संग्रह का काम किया है उसमें धरती तंग हो गयी है। धरती को बचा पाना संभव है कि नहीं ये भी एक प्रश्न चिन्ह है।

सार्थकता क्या है व्यवस्था में होना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना। जीवन जब जागृत होता है अनुभव और प्रमाणिकता मूलक हमारा बोध संकल्प होता है और उसी के अनुरूप में चिंतन, चित्रण सम्पादित करना शुरू करता है। उसी आधार पर तुलन, विश्लेषण और चयन, आस्वादन होता है।

इस क्रम में जो कुछ भी अपराध धरती पर कर रहे हैं उसको रोकना ही पड़ेगा और अपराधविहीन विधि को समझना पड़ेगा। उसके लिए अभी जितनी भी विज्ञान की बात किये हैं अथवा कला और शिक्षा में प्रवेश हो चुकी है इससे यह हो नहीं सकता। इसमें डूबने की जगह है। इसमें धरती को नाश करने की जगह है, मनुष्य एक दूसरे को तंग करने की जगह है। अभी तक हम बड़े-बड़े राज्य मिलकर के कोई सभा बना दिये हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ। जिसमें बहुत से सम्मेलन हुए पर आज तक यह निर्णय नहीं हो पाया कि सामरिक शक्ति अधिकार इस संघ में होना चाहिए या राष्ट्रों में होना चाहिए या नहीं होना चाहिए। समर होना चाहिए या नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार शिक्षा के लिए हर वर्ष में चार बार समीक्षा होती है। पुनः विचार, पुनः समीक्षा किन्तु आज तक यह तय नहीं हुआ कि मानव के लिए सुखद शिक्षा क्या होना चाहिए।

बचपन से मैंने अध्ययन किया है कि हर मानव संतान सही करने का इच्छुक रहता है। न्याय पाने की आवश्यकता उनमें रहती है। सत्य वक्ता होता है। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं वैसे-वैसे झूठ बोलना आ जाता है क्योंकि हम वातावरण ऐसा बनाएं हैं, झूठ बोले बिना रहा नहीं जाता। व्यापार में झूठ समाया ही हुआ है। राज्य शासन में झूठ है, शिक्षण में सच्चाई उभरती नहीं है। तो इस ढंग से आदमी कहाँ जायेगा। इस तरह से मनुष्य परिस्थितियों से बाध्य होकर, तदनुसार व्यवहार व दिनचर्या को बनाता है। इस तरह मनुष्य किसी लक्ष्य तक पहुँचा नहीं और न पहुँच सकेगा सभी बड़ी-बड़ी संस्थाएं, राज्य संस्थान

जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं वैसे-वैसे झूठ बोलना आ जाता है क्योंकि हम वातावरण ऐसा बनाएं हैं, झूठ बोले बिना रहा नहीं जाता। व्यापार में झूठ समाया ही हुआ है। राज्य शासन में झूठ है, शिक्षण में सच्चाई उभरती नहीं है। तो इस ढंग से आदमी कहाँ जायेगा। इस तरह से मनुष्य परिस्थितियों से बाध्य होकर, तदनुसार व्यवहार व दिनचर्या को बनाता है।

सभी में बड़े-बड़े प्रोजेक्ट पड़े हैं पर हम संकट से छूट नहीं पाये।

इस संकट से छूटने की आवश्यकता तो है किन्तु वह केवल तभी होगा जब आदमी समझदार होगा और यह जब भी होगा इस एक ही विधि से होगा। वह है मानवीयता पूर्ण आचरण। मूल्य, मूल्यांकन इसका संबंध सह-अस्तित्व सहज विधि से है। इसके लिए हम आपको कोई प्रयोगशाला नहीं बनाना है। ना कोई युद्ध करना है। संबंध के लिए जानना-मानना जरूरी है उससे पहचानना-निर्वाह करना बन जाता है। जानना-मानना प्रयोजन का ही होता है। बिना जाने-माने, पहचानने-निर्वाह करने में भटकाव होता ही है। जैसे-धरती के संबंध को, प्रयोजन को जानने में चूक गये। पर्यावरण के प्रयोजन को जानने में चूक गये जिसके कारण धरती और पर्यावरण की समग्रता को समझ नहीं पाये और मानव जाति ने धरती का भट्टा बैठा दिया। इसको भली प्रकार से समझने की आवश्यकता है कि इस धरती पर मानव परंपरा रहना है उसके लिये कैसे करवट लिया जाये, उसके लिए ही यह प्रस्ताव है।

भ्रमित होने के कारण संवेदन-शीलता में मनुष्य का जीना हुआ। जिससे मनुष्य को तृप्ति नहीं मिली। अतृप्त आदमी जो-जो करना है वह कर ही देता है। अतृप्ति को तृप्ति में लाने का कुल काम है इसको हम दूसरी भाषा में कहते हैं 'जागृति'। तृप्ति आयेगी समझदारी से। यही तृप्ति का नित्य स्रोत है।

भ्रमित होने के कारण संवेदन-शीलता में मनुष्य का जीना हुआ। जिससे मनुष्य को तृप्ति नहीं मिली। अतृप्त आदमी जो-जो करना है वह कर ही देता है। अतृप्ति को तृप्ति में लाने का कुल काम है इसको हम दूसरी भाषा में कहते हैं 'जागृति'। तृप्ति आयेगी समझदारी से। यही तृप्ति का नित्य स्रोत है। जीवन तो कभी मरता नहीं। जीवन में अगर समझदारी आती है, तृप्ति आती है तो वह निरंतर ही रहेगी। ये सभी बातें हम देख चुके हैं। इस आधार पर

यह प्रस्ताव है समझदारी सर्वमानव का अधिकार है। हर व्यक्ति इसका अनुसंधान कर सकता है। ऐसा मेरा सोचना है। मनुष्य जाति अपने भावी क्षणों का निर्माता है।

प्राणकोशाएं जब मिट्टी में मिल जाती हैं तो उर्वरक बन जाती हैं। आहार को आहार के लिए ये व्यवस्था प्रकृति सहज है। प्राकृतिक रूप में उर्वरक यही वस्तु है। प्राणकोशाएं बनती हैं और प्राणकोशाएं से रचित रचनाएँ पुनः विरचित होकर मिट्टी में मिल जाती हैं इन्हें उर्वरक कहते हैं। धरती में जितनी भी उर्वरकता की आवश्यकता है वह सब स्थापित होने के बाद ही मानव को इस धरती पर अवतरण होने का अवसर मिला। मनुष्य जब से पैदा हुए जंगल पर टूट पड़ा। जंगल पर टूटते-टूटते विज्ञान युग आ गया तो खनिज पर टूट पड़ा। खनिज और वनस्पति दोनों जब अपने अनुपात से अधिक शोषण होने के फलस्वरूप धरती में उर्वरकता का जो स्रोत था वह कम हो गया। अब वैज्ञानिक जो खाद (रासायनिक) बनाकर सोचते हैं हम संसार का कल्याण करते हैं इस बारे में हमारा सोचना है कि प्राकृतिक रूप में जो व्यवस्था है उर्वरक बनने की उसी से इस धरती की उर्वरकता बच सकती है। धरती की सतह को जिस चीज की जरूरत नहीं है नदियाँ उसे समुद्र में ले जाकर दे देती है। तो अब कैसा संतुलन बना? झाड़ वनस्पति ये सब धरती की सतह पर सघन रूप में रहने की स्थिति में ही ये सब चीज संतुलित रहेगी। अब हम क्या करते हैं एक समस्या को लिए एक और समस्या पैदा करते हैं। इस तरह समस्या से समस्या ढकता नहीं है। किसी एक छोटी समस्या को कितनी भी बड़ी समस्या से ढका जाए किन्तु समस्या

प्राणकोशाएं जब मिट्टी में मिल जाती हैं तो उर्वरक बन जाती हैं। आहार को आहार के लिए ये व्यवस्था प्रकृति सहज है। प्राकृतिक रूप में उर्वरक यही वस्तु है। प्राणकोशाएं बनती हैं और प्राणकोशाएं से रचित रचनाएँ पुनः विरचित होकर मिट्टी में मिल जाती हैं इन्हें उर्वरक कहते हैं। धरती में जितनी भी उर्वरकता की आवश्यकता है।

ढकती नहीं है। ये सब कोई शिकायत या निन्दा करने की बात नहीं है। घटित घटनाओं के आंकलन के साथ पुनर्विचार करने का प्रस्ताव है और कोई कारण नहीं है। इस प्रस्ताव में कुल मिलाकर जीवन की दसों क्रियाओं को परम्परा में प्रमाणित करना है। दसों क्रियाओं के लिए समझदारी को प्रमाणित करना है। जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना है। जानना, मानना का तृप्ति बिन्दु जागृति कहलाता है। यही अनुभव कहलाता है। इसलिए अनुभव मूलक विधि से अपने को सार्थक बना सकते हैं। इसमें एक यह भी उपकार है कि इस प्रस्ताव में पुरोहितवाद का कोई स्थान नहीं है। मैं ही सबको तार दूँगा इस बात से मुक्त है। हर व्यक्ति अपनी समझदारी से भ्रम मुक्त हो सकता है। एक व्यक्ति तर जाएगा तो संसार तर जायेगा बात पर्याप्त नहीं हुआ, यह देख लिया गया है। इस प्रस्ताव में जो समझेगा वह तर जायेगा। अभी तक सारे सद्ग्रन्थों में आश्वासन तो बहुत है किन्तु प्रमाण के रूप में धरती पर एक भी आदमी नहीं निकला। तो हम क्या करेंगे परंपरा में जो चीज आती नहीं है उसका कोई स्थान नहीं है। एक आदमी पहले बहुत कुछ पाया था या खोया था इसको हम कैसे सत्यापित करें, पर जो सुलझने का तरीका होगा वह परम्परा में आयेगा ही। इसको इस तरह भी देखा जा सकता है कि अभी तक आदमी बहुत सारा गलती व अपराध किया उसकी कोई परम्परा नहीं होती। परंपरा जब भी होती है समझदारी की। मानव के मानव की तरह जीने की, कला की, परम्परा होती है। समझदारी की परम्परा अध्यवसायी विधि से हो सकती है। जीने की कला परिवार विधि से, समाज विधि से, व्यवस्था विधि से हो पाती है। इसी प्रकार मैं भी

जानना, मानना का तृप्ति बिन्दु जागृति कहलाता है। यही अनुभव कहलाता है। इसलिए अनुभव मूलक विधि से अपने को सार्थक बना सकते हैं। इसमें एक यह भी उपकार है कि इस प्रस्ताव में पुरोहितवाद का कोई स्थान नहीं है। मैं ही सबको तार दूँगा इस बात से मुक्त है। हर व्यक्ति अपनी समझदारी से भ्रम मुक्त हो सकता है।

अपने जीने की कला को समझदारी के आधार पर ही पाया । समझदारी से जो जीने की कला आती है वह निश्चित रूप से व्यवस्था में जीना है ।

न्याय में प्रमाणित हुए बिना आदमी सामाजिक होता नहीं और न्यायविहीन आदमी समुदाय बनाकर कभी भी वाद-विवाद विहीन हो नहीं सकता । ऐसे समुदाय में द्रोह-विद्रोह, संघर्ष और युद्ध होता ही है । शोषण होता ही है और वाद-विवाद, द्रोह-विद्रोह, संघर्ष, शोषण होते हुए आदमी सामाजिक बन गया ऐसे कैसे मान लिया जाए । यदि समुदायों के संघर्ष को ठीक माना जाए तो बाद में हर व्यक्ति युद्ध करे, मरे-मारे ऐसा भी हो सकता है । इसके लिए छूट होना चाहिए, उसको क्यों बांध रखते हैं । तो इस मुद्दे पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है । इसको हम ठीक से हृदयंगम करते हैं तो देखते हैं हम अभी तक जो किए उसमें हम पार नहीं पा सके तो हम सोचने के लिए तैयार हो गये । यह मानव का स्वभाव सहज है कि मनुष्य सोचता ही है । हर व्यक्ति सोच सकता है, शोध कर सकता है । अपने शोध से स्वयं तृप्त होना भी आवश्यक है दूसरों की तृप्ति का स्रोत बनना भी आवश्यकता है ।

यहाँ से शुरू करने के लिए क्या किया जाये ? तो पहला मुद्दा समझदारी आ जाए । समझदारी के पश्चात् जीने की कला को अपनाया जाये । जीने की कला में एक चीज आती है धरती के साथ कैसे जिया जाये, वनस्पति के साथ कैसे जिया जाये, पशु संसार के साथ कैसे जिया जाये और मनुष्य के साथ कैसे जिया जाये । इनमें से किसी एक को भी नहीं छोड़ा जा सकता, सबके साथ जीना ही है ।

न्याय हुए बिना आदमी सामाजिक होता नहीं और न्याय विहीन आदमी समुदाय बनाकर कभी भी वाद-विवाद विहीन हो नहीं सकता । ऐसे समुदाय में द्रोह-विद्रोह संघर्ष और युद्ध होता ही है । शोषण होता ही है और वाद-विवाद, द्रोह-विद्रोह, संघर्ष, शोषण होते हुए आदमी सामाजिक बन गया ऐसे कैसे मान लिया जाए ।

हर व्यक्ति अनुभव कर सकता है, मूल्यांकन कर सकता है । यह दावा हर मनुष्य करता ही है । हर मनुष्य में दावा करने की यह प्रवृत्ति सहज है, थोपा हुआ नहीं है, हर व्यक्ति में यह मूल है, उत्साह है, स्वयंस्फूर्त है । हर मनुष्य की ये आवश्यकता है । इतना सहज स्रोत रहते हुए भी हम कैसे अपेक्षा कर लिए कि हम दूसरों को तारूंगा । यह एक आश्चर्यजनक घटना है और इसमें हम सब भी आस्था करते रहे हैं । तो अब यह सोचना है कि आश्वासन के ऊपर आस्था करना है या प्रमाणों के आधार पर आस्था करना है । मुझे आरम्भिक काल से जैसे ही प्रवृत्ति हुई, प्रमाणों के आधार पर आस्था करने के लिए हमारा विचार हुआ । हमारा स्वाभाविक रूप में उत्साह बढ़ा । प्रमाणों को खोजने के आधार में ही ये सब पुनर्विचार करने की प्रवृत्ति बनी उसके परिणाम स्वरूप जो कुछ हुआ उसे सम्मुख रखने के लिए हम प्रवृत्त है । जैसे सात सौ करोड़ आदमी के सम्मुख रास्ता बंद हो चुका है, उसी भांति मेरे साथ भी रहा होगा । इसको आप अन्दाज कर सकते हैं ।

सभी मानवों जैसे ही स्थिति में मैं भी था । संसार में प्रचलित शिक्षा संस्कार, कर्मकांड संस्कार, इसी जंगल से मैं भी गुजरा हूँ । गुजरने के बावजूद हमारी स्वीकृति ना तो शिक्षा के साथ रही ना परंपरागत संस्कार के साथ रही । हमारी आस्था इसमें स्थिर नहीं हो पायी । यह हमारा सम्पूर्ण उद्देश्यों की ओर दौड़ने का आधार बना ।

सभी मानवों जैसे ही स्थिति में मैं भी था । संसार में प्रचलित शिक्षा संस्कार, कर्मकांड संस्कार, इसी जंगल से मैं भी गुजरा हूँ । गुजरने के बावजूद हमारी स्वीकृति ना तो शिक्षा के साथ रही ना परंपरागत संस्कार के साथ रही । हमारी आस्था इसमें स्थिर नहीं हो पायी । यह हमारा सम्पूर्ण उद्देश्यों की ओर दौड़ने का आधार बना ।

विधि हमारे हाथ लगी। मान्यताओं, आस्थाओं के आधार पर हम साढ़े चार क्रियाओं में जीते हैं। आस्था मतलब बिना जाने, मान लेना। जिसको जानने के बाद मानते हैं उसका नाम होता है विश्वास। विश्वास के साथ जीने में दस क्रियाएं प्रमाणित होती है। मैं दसों क्रियाओं को प्रमाणित करता ही हूँ आप भी कर सकते हैं। सह-अस्तित्व को प्रमाणित करना ही है। इसी क्रम में ये अणु, परमाणु एक दूसरे को पहचानते हुए व्यवस्था के रूप में होते हैं। ग्रह, गोल, वनस्पति, पदार्थ ये सभी सह-अस्तित्व को प्रमाणित करते हुए व्यवस्था में है। सह-अस्तित्व प्रमाणित करने के क्रम में ही और शुद्ध रूप यही है कि सभी इकाईयाँ अपने में ऊर्जा सम्पन्न है। ऊर्जा सम्पन्न रहने की ही यह अस्तित्व अनुपम अभिव्यक्ति है। सभी परमाणु अंश, सभी परमाणु, सभी अणु अपने में व्यवस्था की ओर उन्मुख है। यही बात है जो मानव को प्रेरित करने के लिए मुख्य मुद्दा है। इस मुद्दे पर मेरा अनुमान ऐसा है कि हर ज्ञानी, विज्ञानी को सह-अस्तित्ववादी मानसिकता की आवश्यकता है। इसी मानसिकता के साथ हम मानव बन सकते हैं। मानव से कम में हमारा कोई ऐश्वर्य उदय होने वाला नहीं है। हमारे सम्मुख स्थित जंगल, पहाड़, खनिज जीव सह-अस्तित्व के आधार पर ही अपने वैभवों को प्रकाशित कर दिये हैं। सह-अस्तित्व विधि से ये समृद्ध है। सह-अस्तित्व नहीं होता तो किसी को संरक्षण मिलना ही नहीं था। तो इसका मूल तत्व यही है सत्ता में एक-एक वस्तु (इकाईयाँ) संरक्षित नियंत्रित और ऊर्जा संपन्न है। जो प्राणकोशाओं के रूप में कार्यरत है उनकी सीमा उतनी ही है। इसमें भी सह-अस्तित्व वैभवित है। एक कोशा के साथ दूसरे कोशा का सह-अस्तित्व होने के कारण

ये अणु, परमाणु एक दूसरे को पहचानते हुए व्यवस्था के रूप में होते हैं। ग्रह, गोल, वनस्पति, पदार्थ ये सभी सह-अस्तित्व को प्रमाणित करते हुए व्यवस्था में है। सह-अस्तित्व प्रमाणित करने के क्रम में ही और शुद्ध रूप यही है कि सभी इकाईयाँ अपने में ऊर्जा सम्पन्न है। ऊर्जा सम्पन्न रहने की ही यह अस्तित्व अनुपम अभिव्यक्ति है।

निश्चित रचना रचित कर पाते हैं। ये रचना करने की विधि कोशा में स्थित प्राण सूत्र में निहित रहता है। इसका नाम है रचना विधि। इसमें निरंतर शोध होता रहता है। इसी के गवाही के स्वरूप अनेक प्रकार की रचनायें हमारे सम्मुख है। इस गवाही के साथ हम आश्वस्त हो पाते हैं प्राणसूत्र में भी और परमाणु अंशों में भी शोध कार्यक्रम है।

मनुष्य के शोध कार्य का जो स्रोत है कल्पनाशीलता कर्म-स्वतंत्रता। उसके बाद विचार शक्ति, इच्छा शक्ति, संकल्प शक्ति ये सब शक्तियाँ अपने-आप में अनुसंधान करने के लिये, शोध करने के लिये तत्पर रहते हैं। इन तत्परता के साथ ही इन दस क्रियाओं के साथ जीने वाली क्रिया, जीने वाला वैभव प्रमाणित हो पाता है। इन दस क्रियाओं में मुख्य मुद्दा है अनुभव होना और अनुभवमूलक विधि से जी पाना। अनुभव मूलक पद्धति से जीने के लिये स्वाभाविक रूप से स्रोत बना हुआ है। जीवन अनुभव करना चाहता ही है। समझदार होना ही चाहता है अपने आप को समझदार, अनुभवशील, न्यायाविद्, चिंतनशील मानता ही है। अस्तित्व में संबंध चारों तरफ फैला रहता है उसको पहचानना और निर्वाह करना फलस्वरूप उभयतृप्त होना ही न्यायाविद् का प्रमाण है।

मनुष्य अपने में स्वतंत्र है। समझदार बनना है या नहीं बनना है। यदि समझदार बनना है तो अस्तित्व में समझदार बनने की परिस्थितियाँ समीचीन है। समझदार बनने की पूरी सामग्री है और समझदार नहीं बनना चाहता है उसके लिए भी सामग्री है किन्तु परिणाम दोनों का भिन्न है। नासमझी में शुभ, सुख घटित होने वाला नहीं।

मनुष्य अपने में स्वतंत्र है समझदार बनना है या नहीं बनना है। यदि समझदार बनना है तो अस्तित्व में समझदार बनने की परिस्थितियाँ समीचीन है। समझदार बनने की पूरी सामग्री है और समझदार नहीं बनना चाहता है उसके लिए भी सामग्री है किन्तु परिणाम दोनों का भिन्न है। नासमझी में शुभ, सुख घटित होने वाला

नहीं। मेरे अनुभव अनुसार हम किसी से बंधकर, लदकर और लड़कर जीना नहीं चाहा वैसे ही आप भी किसी वस्तु से बंधकर, लदकर और लड़कर जीना नहीं चाहेंगे और कोई भी फंस कर जीना नहीं चाहता। इस तरह हर व्यक्ति कहीं ना कहीं समझदार होना ही चाहता है।

संबंध जो है सभी ओर जुड़ा ही है इसे हम पहचानते नहीं है यहीं इसके परेशानी का घर है। जिस क्षण से हम संबंधों को पहचानना शुरू किया उसी मुहूर्त से हममें अपने आप से जीवन सहज मूल्यों का निष्पत्ति होती है। जैसे ही हमसे संबंधों को पहचानना होता है मूल्य अपने आप से बहने लगते हैं फलस्वरूप निर्वाह होता है उसका मूल्यांकन होने पर उभयतृप्ति होता है और इस तरह न्याय प्रमाणित होता है। संबंध को पहचानने कि स्थिति, पहचानने की विधि बनती है प्रयोजन के आधार पर। 'मां' को पहचानते हैं तो पोषण के अर्थ में। संरक्षण स्रोत को 'पिता' कहते हैं। प्रमाण स्रोत को 'गुरु', जिज्ञासा स्रोत को 'शिष्य' कहते हैं। प्रचलित रूप में कहा जा रहा है कि हमें यंत्रवत रहना है, यांत्रिकता में प्रवीण रहना है। क्या मनुष्य एक यंत्र है? इसका उत्तर देने वाला कोई माँई-बाप है? मैं कहता हूँ मनुष्य यंत्र नहीं है। सारे के सारे यंत्रों का रचयिता मनुष्य है। जितने भी अभी तक यंत्र रचे गये हैं सभी यंत्रों का जनक मनुष्य है। इसलिये यंत्र मनुष्य को पा नहीं सकते। मनुष्य से कम ही यंत्र बनता है इसलिये मनुष्य का अध्ययन यंत्र कर नहीं सकता। दूसरा सभी यंत्र जड़ प्रकृति से बनता है। अभी तक जितने भी यंत्र बनाये हैं पदार्थावस्था की वस्तु से ही बना है। प्राणावस्था की वस्तु से एक भी यंत्र नहीं बना पाये हैं। ये याद रखने

मैं कहता हूँ मनुष्य यंत्र नहीं है। सारे के सारे यंत्रों का रचयिता मनुष्य है। जितने भी अभी तक यंत्र रचे गये हैं सभी यंत्रों का जनक मनुष्य है। इसलिये यंत्र मनुष्य को पा नहीं सकते। मनुष्य से कम ही यंत्र बनता है इसलिये मनुष्य का अध्ययन यंत्र कर नहीं सकता। दूसरा सभी यंत्र जड़ प्रकृति से बनता है।

की बात है। मनुष्य तो बहुत दूर की बात है। अभी एक भी यंत्र प्राणकोशाओं के साथ नहीं बना पाये हैं और डींग हांकते हैं कि मनुष्य एक यंत्र है। मानव परंपरा के लिये कहाँ तक उचित होगा। अभ्युदय के अर्थ को कैसा पूरा करेगा। अभी तक कितने गहरे यह बात बैठी है कि मनुष्य एक यंत्र है, भोग के लिये वस्तु है। अब तक ऐसा ही सोचा गया है जबकि ऐसा नहीं है। जब कोई अपने बच्चे के साथ जीता है मैं यंत्रधर्मी नहीं हूँ ऐसा लगता ही है।

मुझे मानव संचेतना सहित ही पहचान में आया। संज्ञानशीलता और संवेदनशीलता का संयुक्त रूप ही संचेतना है। संवेदनाओं को नहीं पहचानता हूँ तो यंत्र हो जाता हूँ यांत्रिकता में हमको अभी तक तो कोई तृप्ति मिली नहीं। हम यंत्रवत कार्य करें और तृप्ति पा जायें ऐसा कोई रास्ता हमको मिला नहीं। ऐसा कोई गुरु हो तो हम उसको आमंत्रित करते हैं। वंशानुषंगीय विधि से समझाने वालों को मैंने सुना वे भी हमें समझाने में सफल नहीं हुए। इसी तरह भौतिकवादी तथा सापेक्षवादी सिद्धांत भी मनुष्य को परिभाषित करने में असफल रहे हैं। यदि इन तीन सिद्धान्तों से मनुष्य विश्लेषित हो पाता है तो उसे स्वीकार किया जाये। अन्यथा मनुष्य को मनुष्य के अर्थ में पहचाना जाये। मनुष्य को मनुष्य के अर्थ में पहचानने के लिए यह प्रस्ताव प्रस्तुत है।

इसके पहले आदर्शवादी विधि की बात हुई जिसमें ईश्वर को तारने वाले के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ईश्वर को हमने देख लिया, उसके पास ऐसा कोई फैक्ट्री नहीं है जो तार सके। ईश्वर को

ईश्वर को हमने देख लिया, उसके पास ऐसा कोई फैक्ट्री नहीं है जो तार सके। ईश्वर को किस रूप में देखा? ईश्वर को व्यापक रूप में देखा। ऊर्जा के रूप में देखा लिया जिससे हर इकाई ऊर्जित है। व्यापक में हर इकाई सहअस्तित्व में है इसे देख लिया। ईश्वर में और क्या देखना बाकी है? अगर कुछ बाकी है तो आप देख लेना और संसार को दिखा देना।

किस रूप में देखा ? ईश्वर को व्यापक रूप में देखा । ऊर्जा के रूप में देख लिया जिससे हर इकाई ऊर्जित है । व्यापक में हर इकाई सह-अस्तित्व में है इसे देख लिया । ईश्वर में और क्या देखना बाकी है ? अगर कुछ बाकी है तो आप देख लेना और संसार को दिखा देना । आप अनुसंधान करने के लिए स्वतंत्र हैं । मैंने जो देखा-समझा वह आपके सामने प्रस्तुत है ही । हम न तो संवेदनशील विधि से पूरे हुए न ही यांत्रिक विधि से । संवेदनशील विधि से इन्द्रिय-सन्निकर्ष को हम केन्द्र में लाते हैं फलस्वरूप हमारे इन्द्रिय-सन्निकर्ष की हैसियत और अपेक्षा एवं हमारे भाई की हैसियत और अपेक्षा दोनों में दूरियां हैं । इस तरह से मनुष्य को विविधता में बंटने की आवश्यकता बन ही जाती है जिसके अनुसार संवेदनशील विधि से मनुष्य व्यक्तिवादी हो ही जाता है । दूसरी विधि, भोगवादी विधि से व्यक्ति, व्यक्तिवादी होता ही है उसे हम अनुभव करके बैठे ही हैं । तीसरी विधि, जो पूर्वजों ने बतायी थी भक्तिवादी-विरक्तिवादी । इनमें भी व्यक्तिवादिता का अंत नहीं होता है । इस प्रकार मनुष्य अभी तक जितना भी घोर परिश्रम किया, अथक प्रयास किया, घोर आशा से भर-भर कर प्रयत्न किया सारे प्रयत्नों के विफल होने का आधार व्यक्तिवादी ही सिद्ध हुआ है । व्यक्तिवाद, सह-अस्तित्व का विरोधी है । यही सारे मनुष्य के टूटने का आधार बना । व्यक्ति को जीना कहाँ है ? सह-अस्तित्व में । सह-अस्तित्व में जीने का सरल उपाय है मानव के साथ सह-अस्तित्व को पहचाना जाये । इसको पहचानते हैं तो व्यवस्था में जीना बनता है । समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना बनता है इसको आगे अध्ययन करेंगे । इसी तरह हम

व्यक्ति को जीना कहाँ है ? सह-अस्तित्व में । सह-अस्तित्व में जीने का सरल उपाय है मानव के साथ सह-अस्तित्व को पहचाना जाये । इसको पहचानते हैं तो व्यवस्था में जीना बनता है । समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना बनता है इसको आगे अध्ययन करेंगे । इसी तरह हम जीव-वनस्पति संसार के साथ भी सह-अस्तित्व में जीते हैं ।

जीव-वनस्पति संसार के साथ भी सह-अस्तित्व में जीते हैं । वनस्पति संसार से हम कुछ लेते हैं वनस्पति संसार को देने के लिये भी कुछ हो । बिना कुछ दिये केवल लेना चाहते हैं तो इसका नाम है शेखचिल्ली । इस शेखचिल्ली विधि से प्रताड़ित, दुखी होने के अलावा कुछ बनता नहीं है । इसका अंतिम चरण यही है प्रताड़ना में अंत हो जाना, दुख में अंत हो जाना यही बनते जा रहा है ।

वर्तमान में जो घटनाएं हो रही हैं इसी को घोषित कर रही हैं । सह-अस्तित्व में जीने के लिए वनस्पति संसार अर्थात् जंगल, पेड़-पौधे और पदार्थ संसार के साथ हमारे सह-अस्तित्व को निश्चयन करना आवश्यक है । यदि इनके साथ हमारे सह-अस्तित्व को निश्चय करने में असमर्थ हैं तो हम ज्ञानी नहीं, हम विज्ञानी नहीं हैं, हम विवेकी नहीं हैं । अर्थात् न हमारा ज्ञान पूर्ण है न हमारा विज्ञान पूर्ण न विवेकपूर्ण है । पर्याप्त नहीं है तो कहाँ जियेंगे । पेड़-पौधों को छोड़कर कहाँ जियेंगे । पृथ्वी, पहाड़, खनिज को छोड़कर, जीव संसार को छोड़कर कहाँ जियेंगे । इन सबके साथ हमको जीना ही है, ये सब हमारे साथ रहने वाले द्रव्य हैं, संपदा हैं, ऐश्वर्य हैं । हमको इनके साथ रहना है । इनको भी रहना है । इस निश्चयन में मनुष्य ही प्रमुख मुद्दा है । मनुष्य ही इसमें भ्रमित होकर प्रताड़ित होकर, दुखी होकर जिया है । अब करवट लेने की जरूरत है । जागृत होने की जरूरत है । सबके साथ सह-अस्तित्व को पहचानने की जरूरत है । सह-अस्तित्व को पहचानने की विधि में हम पाये हैं कि ये सबके सब सत्ता में ही है यह सह-अस्तित्व की पहली गवाही है । क्रम से पदार्थावस्था से ही प्राणावस्था उद्गमित, प्रभावित और निरंतर वैभवित है । प्राणावस्था अपने आप में व्यवस्था के रूप में प्रभावित है, प्रमाणित

यदि इनके साथ हमारे सह-अस्तित्व को निश्चय करने में असमर्थ हैं तो हम ज्ञानी नहीं, हम विज्ञानी नहीं हैं । हम विवेकी नहीं हैं । अर्थात् न हमारा ज्ञान पूर्ण है न हमारा विज्ञान पूर्ण न विवेकपूर्ण है । पर्याप्त नहीं है तो कहाँ जियेंगे । पेड़-पौधों को छोड़कर कहाँ जियेंगे । पृथ्वी, पहाड़, खनिज को छोड़कर, जीव संसार को छोड़कर कहाँ जियेंगे ।

है, वैभवित है। जीव संसार भी अपने त्व सहित व्यवस्था में गवाहित है। मनुष्य अपने त्व को कैसे समझा जाये, स्व को कैसे समझा जाये। स्व भी रहे त्व भी रहे यह मुख्य मुद्दा है।

जीवन विद्या से स्व, त्व समझ में आता है। जीवन को मैं 'स्व' के रूप में पहचानता हूँ आप भी पहचान सकते हैं। शरीर को 'स्वरूप' में पहचानते तक भ्रमित रहते हैं। जीवन को 'स्व' रूप में पहचाना, उसी क्षण से मैं व्यवस्था में जीता हूँ। आप भी वैसे ही जी सकेंगे। इससे पहले व्यवस्था होने वाला नहीं है। कितनी प्रकृति सहज, सह-अस्तित्व सहज परिपूर्ण प्रक्रिया है। समझने वाली वस्तु भी जीवन है जो समझेगा वह भी जीवन है। आदर्शवादियों के अनुसार दृश्य, दर्शन, दृष्टा तीनों एक होने पर ही मुक्ति होती है। उनके अनुसार ईश्वर ही दृश्य है, ईश्वर ही देखने वाला है, ईश्वर ही दर्शन है। इन्हीं आधारों पर बहुत सारा वांडमय रचा गया है। इसके बाद भी ईश्वर कैसा है? कहाँ है? क्यों है? ये समझ में नहीं आया। इसके बाद भी ईश्वर के आधारित बात मनुष्य सुनता है, अच्छा लगता है। यह बात देखा गया है अच्छा लगने में, अच्छा होने में दूरी यथावत बना हुआ है। इसके बाद मनुष्य को यंत्र बताने लगे वो भी हो नहीं पाया लेकिन बताते ही रहे। जैसे ईश्वर को बता नहीं पाये फिर भी बताते ही रहे। इस ढंग से हम फंस गये हैं इससे हटकर कुछ सोच नहीं पाते। इससे छुटकारा पाने की विधि है कि जीवन तो नित्य है। शरीर तो जीवन के लिए बारम्बार घटना है। शरीर की रचना गर्भाशय में होती है। अस्तित्व सहज विधि से परमाणु विकसित होकर जीवन पद में आता है। शरीर बारम्बार रचित व विरचित होता है। प्राणावस्था की

आदर्शवादियों के अनुसार दृश्य, दर्शन, दृष्टा तीनों एक होने पर ही मुक्ति होती है। उनके अनुसार ईश्वर ही दृश्य है, ईश्वर ही देखने वाला है, ईश्वर ही दर्शन है। इन्हीं आधारों पर बहुत सारा वांडमय रचा गया है। इसके बाद भी ईश्वर कैसा है? कहाँ है? क्यों है? ये समझ में नहीं आया।

एक सीमा है उसके बाद वह विरचित हो जाता है। शरीर भी प्राणकोशों से रचित इकाई है। शरीर रचना में जितना संपन्न मेधस हो सकता था वह मानव शरीर रचना में निहित है। इस आधार पर मैं इस बात को सत्यापित कर रहा हूँ कि मानव संपूर्ण अस्तित्व को दूसरे को संप्रेषित कर सकता है। इससे ज्यादा मेधस का कोई प्रयोजन भी नहीं है। इस आधार पर मानव की शरीर रचना (दो प्राणसूत्र रचना विधि के आधार पर अनुसंधान होते बनी) श्रेष्ठतम हो गई है और भी कोई चीज बची होगी वह भी आगे पूरी हो जायेगी। इस बीच शरीर यात्रा में हमको क्या करना है? जीवन जागृति को प्रमाणित करना है। इस क्रम में हम जैसे ही शुरू किये, संवेदना के छुपने का काम हुआ नहीं। न विज्ञान विधि से न आदर्शवादी विधि से। संवेदनाओं के विरोध में बहुत सारे तप बताये गये हैं। बहुत से तपस्वी हुए इस धरती पर किन्तु इन तपस्या के परिणाम में एक निश्चित समझदारी जिसके लिये मानव तरस रहा है वह व्यवहार में, परंपरा में आया नहीं। अब तपस्वी क्या खोये क्या पाये ये तो वही सत्यापित करेंगे। सामान्य लोग ऐसे तपस्वी से सिद्धि चमत्कार की अपेक्षा किये हैं। उसके पीछे लट्टू होकर घूमे हैं।

उसके पीछे लट्टू होकर घूमे हैं। मैं बता दूँ कि अस्तित्व में न सिद्धि है न चमत्कार है, अस्तित्व में निश्चित व्यवस्था है, निश्चित परिणाम है, निश्चित उपलब्धि है, निश्चित मंजिल है, इसकी निरंतरता है, इसको मैंने देखा है, समझा है। ऐसे निश्चित मंजिल के लिये हम आप प्रत्याशी हैं। निश्चित विधि से ही वह निश्चित मंजिल मिलने वाला है। मनुष्य का अध्ययन छोड़कर, काकरोच को सर्वाधिक विकसित प्राणी बताकर, रासायनिक खाद बनाकर, कीटनाशक बनाकर हम मनुष्य की मंजिल नहीं पायेंगे। मनुष्य की मानसिकता को धन के रूप

बहुत से तपस्वी हुए इस धरती पर किन्तु इन तपस्या के परिणाम में एक निश्चित समझदारी जिसके लिये मानव तरस रहा है वह व्यवहार में, परंपरा में आया नहीं। अब तपस्वी क्या खोये क्या पाये ये तो वही सत्यापित करेंगे। सामान्य लोग ऐसे तपस्वी से सिद्धि चमत्कार की अपेक्षा किये हैं। उसके पीछे लट्टू होकर घूमे हैं।

में, शोषण के रूप में प्रयोग करके भी मनुष्य अपनी मंजिल को नहीं पायेगा। इसका नाम दिया है 'इन्टेलेक्चुअल प्रापर्टी राइट'। विश्व की सर्वोपरि संस्थाएँ और न्यायालय भी इसे स्वीकारना चाह रहे हैं। जीवन की अक्षय शक्तियाँ हैं उसको कहाँ शामिल किया जाये। उसको भोगद्रव्य के रूप में कैसे उपयोग किया जाये इसका उत्तर कोई देगा? क्या जीवन को समझकर ऐसा प्रस्ताव रखा है? यह कहाँ तक मानव जाति के लिए उपकारी है? मेरा अनुभव यह कहता है मनुष्य की जीवन शक्ति को कितना भी उपयोग करें वह घटने वाली नहीं है। इसे आप अनुभव करें करोड़ों आदमी अनुभव करके देख सकते हैं। जीवन शक्तियों का जितना भी उपयोग करें, शक्तियाँ और ताजा व प्रखर होती है। जितना आज उपयोग किया कल उससे ज्यादा प्रखर हो जाती है। इस विधि से जीवन शक्तियों का कितना भी उपयोग करें वे खत्म होती नहीं हैं। उनको तादाद में बांध नहीं सकते। बांधने जाओगे तो बांधने वाला ही विकृत होगा। इस प्रकार बुद्धिवाद से भी हम कैसे गिरवी करते हैं, दास बनते हैं, शोषण का आधार बनाते हैं इसका नमूना है यह। मैं समझता हूँ यह मानव विरोधी है, सह-अस्तित्व विरोधी है बुद्धि को शोषण का आधार बनाकर, द्रोह-विद्रोह का आधार बनाकर, बपौती बनाकर, हमारा बुद्धि के लिए आपको टैक्स देना है ऐसा बताकर हम समाज बनाने की घोषणा करते हैं। यह क्या सच्चा हो सकता है? यह सोचने का मुद्दा है। मेरे अनुसार यह सर्वथा मिथ्या है बुद्धि को कोई सीमित किया नहीं जा सकता और सब मनुष्यों की बुद्धि अक्षय है इसलिये उसे सीमा में पुस्तकों में बांधा नहीं जा सकता। हम जितने वाङ्मय लिखा हूँ उससे भी बहुत बड़ा मैं स्वयं को अनुभव किया हूँ।

मनुष्य की जीवन शक्ति को कितना भी उपयोग करें वह घटने वाली नहीं है। इसे आप अनुभव करें करोड़ों आदमी अनुभव करके देख सकते हैं। जीवन शक्तियों का जितना भी उपयोग करें, शक्तियाँ और ताजा व प्रखर होती है। जितना आज उपयोग किया कल उससे ज्यादा प्रखर हो जाती है।

जितने भी यंत्र बने हैं उससे मैं बड़ा हूँ। मानव जाति बड़ा है ही। मानव ने ही सब किताबों को लिखा है और सब किताबों से बड़ा मानव है। यहाँ पर आये बिना हम अपनी सद्बुद्धि को प्रयोग करेंगे यह हमको दिखता नहीं। इन सब चर्चाओं से शायद सोचने पर सब अपने में औचित्यता को स्वीकार कर सकते हैं। स्वीकारने के क्रम में यही अंतिम बात आती है कि हमको समझदार बनना ही है। समझदार बनने में कोई तकलीफ नहीं है। नासमझी के प्रयोग में ही तकलीफ है। देखिए, यह धरती अपने में एक है। इसको हम खण्ड-प्रखण्ड में बांटकर हम राष्ट्र के रूप में देखते हैं। इतना ही नहीं उन हर एक खण्डों के चारों ओर सेना खड़ी कर देते हैं जब चाहे तब हाथापाई करते हैं, झड़प करते हैं। धरती तो टुकड़ा-टुकड़ा हो नहीं सकता, होने के पश्चात कोई बच भी नहीं सकता। उसको टुकड़ा ही मानकर (जबकि वह टुकड़ा नहीं है) क्या हम सच्चाई करते हैं। यह एक सोचने का मुद्दा है। हमारा झूठ कैसे घर किया है इसका उदाहरण है यह। दूसरा मिसाल मानव को अलग-अलग करने के लिए रंग और नस्ल के आधार पर हमने सोचा, जैसा जानवरों में होता है। यह कैसी बुद्धिमत्ता है। मनुष्य का मूल्यांकन समझदारी के आधार पर होता है ना कि नस्ल और रंग के आधार पर। इसको हम पहले भी अच्छी-अच्छी घटनाओं के रूप में देख चुके हैं। जैसे - दास युग का विरोध, राजयुग का विरोध।

मानव को अलग-अलग करने के लिए रंग और नस्ल के आधार पर हमने सोचा जैसा जानवरों में होता है। यह कैसी बुद्धिमत्ता है। मनुष्य का मूल्यांकन समझदारी के आधार पर होता है ना कि नस्ल और रंग के आधार पर। इसको हम पहले भी अच्छी-अच्छी घटनाओं के रूप में देख चुके हैं। जैसे - दास युग का विरोध, राजयुग का विरोध।

ही, तो झूठ का स्रोत कहाँ-कहाँ है ? राष्ट्र की सोच (धरती विखण्डित है ऐसा सोचना) संविधान, शक्ति केन्द्रित शासन । राष्ट्र सर्वोपरि, संविधान सर्वोपरि यह माना गया । संविधान का मर्म क्या निकला शक्ति केन्द्रित शासन । शक्ति केन्द्रित शासन क्या है ? **गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना, युद्ध को युद्ध से रोकना** । सामान्य सुविधाओं का उपक्रम भी कुछ संविधानों में किया है । जिसमें यह सोचा गया है सब के पास पैसा हो तो वह जी लेगा, लड़ लेगा ।

संघर्षपूर्वक ही जीना है, संघर्ष से ही अस्मिता बना रहता है यही सब घोषणा करते हैं । इन घोषणाओं में क्या सच्चाई कर रहे हैं ? सारे झूठ की जड़ इन्हीं घोषणाओं में है । इसी पर आधारित परिवार, व्यापार, शिक्षा आदि झूठ के पुलिंदे के नीचे दबे हैं । कुछ इससे छूटने की कोशिश करते हैं कुछ दबे रहते हैं । हमारी इच्छा है शिक्षा में परिवर्तन करने की ।

अभी हम जीवन सहज दस क्रियाओं को प्रमाणित करने को तत्पर हुए हैं । जीवन होने की स्वीकृति हर मानव में है ही । हर व्यक्ति अपने मन से कहता ही है कि जीवित हूँ, जीवन्त हूँ । किन्तु जीवन क्या है ? जीवन का प्रयोजन क्या है ? जीवन का अध्ययन करता कौन है ? जीवन की दस क्रियाओं को मैंने समझा है, जीकर देखा है, ये मुझमें प्रमाणित हुई हैं । जीवन की दस क्रियाओं का नाम पहले समझ लें ।

1. आत्मा - जीवन का यह एक भाग है जिसे मध्यांश के रूप में मैंने देखा है । गठनपूर्ण परमाणु के मध्यांश के रूप में यह

जीवन होने की स्वीकृति हर मानव में है ही । हर व्यक्ति अपने मन से कहता ही है कि जीवित हूँ, जीवन्त हूँ । किन्तु जीवन क्या है ? जीवन का प्रयोजन क्या है ? जीवन का अध्ययन करता कौन है ? जीवन की दस क्रियाओं को मैंने समझा है, जीकर देखा है, ये मुझमें प्रमाणित हुई हैं ।

अपने आप में क्रियाशील रहता है । उसके प्रथम परिवेश, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ परिवेश के रूप में बाकी सभी क्रियायें सम्पादित होती है । जीवन परमाणु के मध्य में (आत्मा) दो ही क्रिया है :- अनुभव और प्रमाणिकता ।

2. बुद्धि - प्रथम परिवेश में बोध और ऋतम्भरा (संकल्प) दो क्रियायें होते देखा हैं ।
3. चित्त - द्वितीय परिवेश में चिंतन और चित्रण दो क्रियायें होती हैं ।
4. वृत्ति - तृतीय परिवेश में तुलन और विश्लेषण दो क्रियायें होती हैं ।
5. मन - चतुर्थ परिवेश में चयन और आस्वादन दो क्रियायें होती हैं ।

अभी तक मानव साढ़े चार क्रियाओं में प्रमाणित हुआ है । तुलन में दो पद्धति है प्रिय, हित, लाभ, और न्याय, धर्म, सत्य । प्रिय, हित, लाभ के आधार पर संवेदनशीलता आधारित कार्य करना बन गया । संवेदनशीलता इंद्रिय मूलक, शरीर मूलक होता है । जबकि इंद्रियों को जीवंत बनाने का काम जीवन ही करता है । शरीर को जीवन मान लेना ही मूल भ्रम है । शरीर को जीवन मान लेने पर शरीर के अनुसार चलना होता है यही मान्यता का आधार है, जानना कुछ होता नहीं । होना क्या चाहिये जीवन को जीवन माना जाये और शरीर को शरीर । जीवन का और शरीर का प्रयोजनों के आधार पर मूल्यांकन होना चाहिए । यदि ऐसा होता है तो मानव संज्ञा में जीना बनता है । व्यवस्था में जीना बनता है । यदि इनका मूल्यांकन नहीं

मानव साढ़े चार क्रियाओं में प्रमाणित हुआ है । तुलन में दो पद्धति है प्रिय, हित, लाभ, और न्याय, धर्म, सत्य । प्रिय, हित, लाभ के आधार पर संवेदनशीलता आधारित कार्य करना बन गया । संवेदनशीलता इंद्रिय मूलक, शरीर मूलक होता है ।

हुआ तो अव्यवस्था होगा ही। व्यवस्था में जीने के लिए आवश्यक है कि जीवन का मूल्यांकन प्रयोजन के आधार पर तथा शरीर का मूल्यांकन उपयोगिता के आधार पर हो। शरीर की उपयोगिता, जीवन अपनी जागृति को मानव परंपरा में प्रमाणित करने के लिए है। मानव शरीर के डिजाइन को मानव ने नहीं बनाया है। मानव शरीर बनने के बाद जब शिशु मिलता है तो वह जीवंत ही होता है। जीवंत शिशु मिलने के बाद हम यह मान लेते हैं यह शरीर ही जीवन है। थोड़े दिन बाद वह शिशु भी यही मान लेता है। इस ढंग से परम्परा अपने आप में फंसने की बात बनी हुई है और इस फंसाव से निकलने के लिए अभिभावक को समझना होगा।

शिशु का शरीर गर्भ में बनता है और उसे कोई न कोई 'जीवन' चलाता है। 'जीवन' प्रकृति में है ही। शरीर को 'जीवन' चौथे-पांचवें महीने में चलाना शुरू कर देता है। इस प्रकार शरीर और जीवन का संयोजन गर्भाशय में ही हो जाता है। 'जीवन' शरीर नहीं है। यह पहचानने की बात इस प्रकार है। शरीर के किसी भी अंग अवयव में न्याय की, धर्म की, सत्य की प्रतीक्षा अपेक्षा नहीं है। किन्तु हम हर मानव से न्याय की, व्यवस्था की, सत्य की, अपेक्षा, प्रतीक्षा करते ही हैं। इन अपेक्षाओं का पूरा होना ही जीवन की दस क्रियाओं को प्रमाणित करना है। शरीर को जीवंत रहने के लिए शरीर में जीवन होना जरूरी है।

'जीवन' अपने से, सदा से, शिशु काल से मन की दो क्रियाओं चयन, आस्वादन को शुरू करता है। विश्लेषण और तुलन में

मानव शरीर के डिजाइन को मानव ने नहीं बनाया है। मानव शरीर बनने के बाद जब शिशु मिलता है तो वह जीवंत ही होता है। जीवंत शिशु मिलने के बाद हम यह मान लेते हैं यह शरीर ही जीवन है। थोड़े दिन बाद वह शिशु भी यही मान लेता है। इस ढंग से परम्परा अपने आप में फंसने की बात बनी हुई है।

विश्लेषण तो करता ही है तुलन में केवल प्रिय, हित, लाभ के आधार पर ही करता है। चित्त की एक क्रिया चित्रण को हम करते ही हैं। चित्रण क्रिया के कारण मनुष्य अपना सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा की समस्त वस्तुओं को चित्रित कर लिया है और उसको प्राप्त कर लिया है। प्राप्त करने के बाद भी हम व्यवस्था तक नहीं पहुँचे। इन्हीं उपलब्धियों को हम सोचते रहे श्रेष्ठता की उपलब्धि है, मानवीयता की उपलब्धि है। मानव के अधिकारों की उपलब्धि है, शोषण, संघर्ष की उपलब्धि है। इन बातों को सुनकर हँसी भी आती है। अफसोस भी होता है। हम कैसे मान लिए कि हम मानव के लिए सब कुछ पा लिए, मनुष्य का अध्ययन कर लिए। यह सोचने का पुनर्विचार करने का मुद्दा है। शरीर शास्त्र के नाम से जो कहा जाता है उसमें केवल शरीर रचना व प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है और कहते हैं कि मनुष्य का अध्ययन कराया जाता है। आप सोचिए शरीर को काटकर, मांसपेशियों को, हड्डियों को गिनकर मनुष्य का अध्ययन किया जा सकता है? जीवंत मनुष्य में ही शरीर, आँख, कान आदि का अध्ययन करने पर मनुष्य का अध्ययन कैसे होगा। इस तरह परंपरा में मनुष्य को झूठ का पुलिंदा लादा जाता है।

आप सोचिए शरीर को काटकर, मांसपेशियों को, हड्डियों को गिनकर मनुष्य का अध्ययन किया जा सकता है? जीवंत मनुष्य में ही शरीर, आँख, कान आदि का अध्ययन करने पर मनुष्य का अध्ययन कैसे होगा। इस तरह परंपरा में मनुष्य को झूठ का पुलिंदा लादा जाता है जबकि हम मनुष्य का अध्ययन किये नहीं और डींग हांकते हैं कि हम मनुष्य का अध्ययन कर लिये हैं। अस्तित्व का अध्ययन किये नहीं और कहते हैं कि हम इस पर शासन करेंगे। इस ढंग से मानव परंपरा बोझ तले दब गई है। अब दो ही विकल्प है या तो इससे निकला जाये या दबकर मरा जाये। नियति ही अपने को संतुलित करती है

आप सोचिए शरीर को काटकर, मांसपेशियों को, हड्डियों को गिनकर मनुष्य का अध्ययन किया जा सकता है? जीवंत मनुष्य में ही शरीर, आँख, कान आदि का अध्ययन करने पर मनुष्य का अध्ययन कैसे होगा। इस तरह परंपरा में मनुष्य को झूठ का पुलिंदा लादा जाता है।

यह भी हमें पढ़ाया जाता है। मानव जाति जितना अति कर सकता है करने के बाद प्रकृति ऐसी परिस्थिति पैदा करेगी कि मानव इस धरती पर रहेगा ही नहीं। पर्यावरण की बात पर हम हल्ला गुल्ला सुनते ही है कितना आदमी बचेगा कितना मरेगा इसके लिये उपाय सोचा जा रहा है। कुछ देश वाले सोचते हैं हमारा देश बच जाये, कुछ धर्म वाले सोचते हैं कि हमारे धर्म वाले बच जायें। बचाने वाला वही है किसी एक का नाम लेते हैं। उसमें कुछ मजहब की बात रहती है। बाकी का अंत होने वाला है। यह सब कहकर कहाँ जाना चाहते हैं? क्या होगा ऐसा सोचने से? इस मुद्दे पर हमारा सोचना यह है कि धर्म और राज्य, शिक्षा के नाम पर सभी भटक चुके हैं। अच्छी तरह से। धर्म गद्दी में धर्म की कोई सार्वभौमता नहीं है। धर्मगद्दी के नाम पर जितने भी धर्म हैं उनमें कोई सार्वभौम धर्म का आकार नहीं है। कोई शिक्षा नहीं, कोई प्रमाण नहीं। कहाँ से धर्म को लायें? राज्य गद्दी में राज्य की कोई अवधारणा नहीं है।

हमें राज्य को बचाने के लिये काम करना है। क्या करेंगे? संघर्ष करेंगे। संघर्ष का कुल मसाला है विद्रोह-द्रोह, शोषण और युद्ध। ये चार मसाला कौन बनाता है। प्रकृति या मनुष्य। इसको देखा गया, अध्ययन किया गया तो पता लगा कि यह मसाला मनुष्य ही बनाता है, भ्रमवश बनाता है। दिग्गज संस्था दो ही है - धर्मगद्दी, राज्यगद्दी। सबसे शक्तिमान सारा ताकतवार, सारा साधन जिनके पास है ये दोनों गद्दी है। ये दोनों गद्दी इस तरह से रिक्त हो गई है। व्यापार गद्दी का पूछना ही नहीं है। वह पहले से ही शोषण के लिये तैयार बैठी है।

हमें राज्य को बचाने के लिये काम करना है। क्या करेंगे? संघर्ष करेंगे। संघर्ष का कुल मसाला है विद्रोह-द्रोह, शोषण और युद्ध। ये चार मसाला कौन बनाता है। प्रकृति या मनुष्य। इसको देखा गया, अध्ययन किया गया तो पता लगा कि यह मसाला मनुष्य ही बनाता है, भ्रमवश बनाता है।

शिक्षा गद्दी से पूछा गया उनके पास कोई मार्गदर्शन की, दिशा दर्शन की चिन्हित लक्ष्य को पहचानने की कोई व्यवस्था नहीं है। अब बोलिये, सामान्य आदमी क्या करे? ये जो चार परंपरायें हैं (धर्म, राज्य, व्यापार, शिक्षा) इनसे कोई रास्ता मिलने वाला नहीं। तो रास्ता खोजा जाये, बनाया जाये यही साहसिकता है। वह रास्ता समझदारी, इमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी का होगा। मारपीट के रास्ते से कोई लक्ष्य मिलता नहीं। मारपीट से आवश्यकतायें पूरी होती नहीं है। इसके बाद भी इसकी परंपरा बनाकर रखे हैं। यह भी बहुत बड़ा भ्रम हो गया कि नहीं। तो अब बुद्धि की बात यही है कि हम समझदार हों। समझदारी की जांच स्वयं में है। मुझको जांचकर आप समझदार हो नहीं सकते। आप स्वयं अपने को जाँचेंगे तब आप समझदार होंगे। मैं संसार को जांच-जाँच कर तीस वर्ष सिर कूट लिया। हमको कहीं भी समझदारी का कोई अंश नहीं मिला। जब हम बीस वर्ष प्रयत्न कर अपने को जाँचा तब हमें समझदारी का ठौर मिला। विगत प्रयास से हमने जो भी पाया उसे अध्यवसायी विधि से मनुष्य को सौंपना चाहा। इसी क्रम में यह एक प्रयास है।

अब तक आपको इंगित हो जाता है कि सह-अस्तित्व ही परम सत्य है। सह-अस्तित्व में जीना ही हमारा परम धर्म है यह समझ में आता है तो उसके लिए सारी समझदारी समीचीन है। यह बहुत सुलभ है। मेरे हिसाब से झूठ ज्यादा कठिन है सच्चाई में जीना ज्यादा आसान है।

अब तक आपको इंगित हो गया होगा कि सह-अस्तित्व ही परम सत्य है। सह-अस्तित्व में जीना ही हमारा परम धर्म है यह समझ में आता है तो उसके लिए सारी समझदारी समीचीन है। यह बहुत सुलभ है। मेरे हिसाब से झूठ ज्यादा कठिन है सच्चाई में जीना ज्यादा आसान है। ज्यादा सुगम है मैं जीकर देखा हूँ। पहले जब प्रश्नों से घिरा था जीने में कितना दिक्कत होता था। जब समाधान

मिल गया, तो प्रश्नों से मुक्त हो गया और जीना सुगम हो गया। यदि यह बात आपको भी ठीक लगती है तो हमारा विश्वास बढ़ेगा ही। इस बात को साथियों ने देख लिया है आप भी चाहते तो आप भी जाँचिए। जाँचना चिंतन से शुरू होता है न्याय से शुरू होता है। क्या हम संबंधों को समझे हैं या संबंधों का हम निर्वाह करते हैं, संबंधों में निहित मूल्यों का मूल्यांकन कर पाते हैं, उभय तृप्ति की जगह आ पाते हैं या नहीं आ पाते हैं ये जाँचने का मुद्दा है। यदि ये जाँचना शुरू करते हैं तो प्रिय, हित, लाभ में निश्चयता मिलती नहीं। हमको जो प्रिय लगा, आपको नहीं लगेगा। हमको जो हितकारी लगा आपको नहीं लगेगा जितने लाभ से आप संतुष्ट हुए उतने से हम नहीं होंगे। इसी में सभी मानव फँसे हैं। इस तरह प्रिय में, हित में, लाभ में समानता का आधार नहीं हो सकता। इससे छूटने के लिए क्या किया जाए इस तीन तुलन (प्रिय, हित, लाभ) के बदले दूसरा तुलन (न्याय, धर्म, सत्य) रखा हुआ है। न्याय दृष्टि से जब हम तुलन करने लगते हैं उसे कहते हैं, चिंतन। न्याय हमको संबंध पहचानने के बाद ही समझ में आता है। संबंध पहचानने में आ गया फलस्वरूप मूल्य निर्वाह होने लगा, उसका फलवती स्वरूप है मूल्यांकन हुआ और उभयतृप्ति होने लगी इसका नाम है न्याय। न्याय वही है जो दोनों पक्षों को संतुलित रूप से संतुष्ट कर सके। यदि दोनों पक्ष संतुष्ट नहीं हैं तो न्याय नहीं है। इस संबंध में हमसे कोई पूछा कोई अपराध या गलती करता है उसका क्या किया जाये? अपराध/गलती कोई इसलिए करता है क्योंकि उसको हम समझदार बनाते नहीं हैं। आप

हमसे कोई पूछा कोई अपराध या गलती करता है उसका क्या किया जाये? अपराध / गलती कोई इसलिए करता है क्योंकि उसको हम समझदार बनाते नहीं हैं। आप अपराधी को लेकर क्यों चलते हो, सही आदमी को लेकर क्यों नहीं चलते हो। बहुत से आदमी ऐसे हैं जो कोई अपराध नहीं करते हैं उनके साथ हमारा कोई समस्या नहीं है।

अपराधी को लेकर क्यों चलते हो, सही आदमी को लेकर क्यों नहीं चलते हो। बहुत से आदमी ऐसे हैं जो कोई अपराध नहीं करते हैं उनके साथ हमारा कोई समस्या नहीं है। परस्पर हम मूल्यांकन करते हैं और उभयतृप्ति पाते ही हैं। इसको कैसे भुलाया जाये। एक तो यह प्रमाण आपके सामने है आपको इसकी जरूरत है कि नहीं। मैं समझता हूँ सभी लोग इसी की बाट देखते बैठे हैं। मुझमें आपमें इतना ही अंतर है मैं दर्दवश एक कदम आगे बढ़ गया। मुझको यह चीज हासिल हो गई इसको मैं सत्यापित कर पाता हूँ। समझने के बाद आप भी यही सत्यापित करेंगे। इसमें इतना सुख है, इतना तृप्ति है। इस प्रकार सर्वमानव सत्यापित करने के योग्य हो जायेंगे समझदारी के बाद। समझदारी कहाँ मिलेगा? शिक्षण संस्थाओं में अध्यवसायी विधि से। शिक्षण संस्था क्या है? सभी अभिभावकों की सम्मिलित अभिव्यक्ति है।

समझदारी, बोध को प्रमाणित करने के लिए जो कार्य है उसका नाम है शिक्षा। समझदारी, बोध हुये बिना शिक्षण कार्य होता नहीं। समझदारी के लिए, शिक्षण संस्थाएँ जिम्मेदार हैं, हर परिवार शिक्षा के लिये सूत्र है। इसलिये शिक्षण संस्था के लिए एकीकरण, निजीकरण, सरकारीकरण ये सब सोचने से कुछ होगा नहीं।

समझदारी के लिए, शिक्षण संस्थाएँ जिम्मेदार हैं, हर अभिभावक जिम्मेदार है। हर परिवार शिक्षा के लिये सूत्र है। इसलिये शिक्षण संस्था के लिए एकीकरण, निजीकरण, सरकारीकरण ये सब सोचने से कुछ होगा नहीं और ना कुछ हुआ है। सीधे-सीधे अभिभावक को शिक्षण संस्था के रूप में देखा जाना चाहिये। इसी में मानव का कल्याण होगा। समझदारी से यही रूप निकलता है। हमें न्यायप्रदायी क्षमता से निष्णात होना होगा। न्यायप्रदायी क्षमता स्वयं में प्रमाणित होना होगा।

समझदारी, बोध को प्रमाणित करने के लिए जो कार्य है उसका नाम है शिक्षा। समझदारी, बोध हुये बिना शिक्षण कार्य होता नहीं। समझदारी के लिए, शिक्षण संस्थाएँ जिम्मेदार हैं, हर अभिभावक जिम्मेदार है। हर परिवार शिक्षा के लिये सूत्र है। इसलिये शिक्षण संस्था के लिए एकीकरण, निजीकरण, सरकारीकरण ये सब सोचने से कुछ होगा नहीं।

ये दोनों चीजों से सम्पन्न होते हैं तभी हम न्याय कर पायेंगे। दोनों चीजों से सम्पन्न होते हैं तभी हम समझते हैं। जब समझेंगे नहीं तब न्याय कैसे करेंगे। बड़े-बड़े न्यायालयों में न्याय को समझा हुआ न्यायमूर्ति नहीं मिलते हैं तो और लोग क्या करेंगे? जीने में कम से कम न्याय तो होना ही चाहिये। इसका प्रमाण है मानवीयतापूर्ण आचरण। मानवीयतापूर्ण आचरण से कम में न्याय तो होता ही नहीं है। चिंतन के साथ जीवन की छह (6) क्रियायें पूरी हो जाती हैं। विश्लेषण प्रिय, हित, लाभ के अर्थ में बहुत कुछ कर चुके हैं। शरीर की आवश्यकताओं के लिये सामान्य आकांक्षा और महात्वाकांक्षा संबंधी वस्तुओं का उत्पादन बहुत कर चुके हैं। इसके अलावा जो वस्तु है जैसे बम बनाना, मिसाइल बनाना, युद्धपोत आदि बनाना ये चीजें मानवोपयोगी नहीं हैं। ये निरर्थक हैं और बरबादी के कारण हैं। तर्क विधि से और घटना विधि से यह सिद्ध हो जाता है। तात्त्विक विधि से, तर्क विधि से, व्यवहार विधि से मनुष्य के लिए वस्तुओं का उपयोग सिद्ध होता है। तात्त्विक विधि से हम सुखी होना चाहते हैं। हम सुखी होते हैं तात्त्विक विधि रूप में हम व्यवहारिक हो गये। उसको प्रमाणित करने के लिये हम व्यवहारिक होते हैं यही तर्क विधि है। इस ढंग से तर्क, तात्त्विक और व्यवहारिक विधि से आदमी प्रमाणित होने की बात आती है। हम जितना भी बात करते हैं, पढ़ते हैं, लिखते हैं, तर्क विधि के आधार पर करते हैं। तर्क, तात्त्विकता के अर्थ को छूता है यही संप्रेषणा की महिमा है।

यदि हमारी संप्रेषणा में अगले व्यक्ति को तात्त्विकता छू गयी तो

यदि हमारी संप्रेषणा में अगले व्यक्ति को तात्त्विकता छू गयी तो हमारी संप्रेषणा सार्थक है। यदि वही तत्व व्यवहार की सार्थकता को इंगित कराता है (व्यवहार में सार्थकता है, मानव का प्रयोजन समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व इन चारों को इंगित करा देना) और बोध कराता है तो व्यवहार ज्ञान होता है।

हमारी संप्रेषणा सार्थक है। यदि वही तत्व व्यवहार की सार्थकता को इंगित कराता है (व्यवहार में सार्थकता है, मानव का प्रयोजन समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व इन चारों को इंगित करा देना) और बोध कराता है तो व्यवहार ज्ञान होता है। इसमें तात्त्विक ज्ञान हो गया। तात्त्विक ज्ञान के लिए भी तर्क चाहिए, व्यवहार ज्ञान के लिए भी तर्क चाहिए। पहली उपलब्धि यही है अपना मूल्यांकन, परिवारजनों का मूल्यांकन किस आधार पर होगा। मूल्यों के आधार पर, संबंधों के आधार पर, उभयतृप्ति के आधार पर। व्यवहार में हम न्यायिक हो गये यही प्रमाणित कर सकते हैं। तब आदमी मानव हो गया। पहले मानव हुआ फिर समझदारी के आधार पर स्वायत्त हो गया और छः गुण आ गये:-

1. स्वयं में विश्वास
2. श्रेष्ठता का सम्मान
3. प्रतिभा में संतुलन
4. व्यक्तित्व में संतुलन
5. व्यवहार में सामाजिक
6. व्यवसाय में स्वावलंबी।

ये छह अहर्ताएं जब मेरे समझ में आयी तो मैं स्वयं को स्वायत्त अनुभव किया हूँ। वैसे ही हम परिवार में अपनी समझदारी, समृद्धि को प्रमाणित करने में समर्थ रहे। इसी सत्यतावश आपके सम्मुख प्रस्तुत हुए। हर व्यक्ति सज्जन बनना चाहता ही होगा, सज्जनता के लिए न्यूनतम अहर्ता न्याय है। न्याय को जैसा मैं देखता हूँ वह संबंध, मूल्य, मूल्यांकन और उभयतृप्ति ही है। इसके बाद हमारे समझ में बात आयी है कि हर व्यक्ति जन्म से ही न्याय का याचक है। सही कार्य-व्यवहार करना चाहता ही है। सत्य वक्ता होता ही है, इस

हर व्यक्ति सज्जन बनना चाहता ही होगा, सज्जनता के लिए न्यूनतम अहर्ता न्याय है। न्याय को जैसा मैं देखता हूँ वह संबंध, मूल्य, मूल्यांकन और उभयतृप्ति ही है। इसके बाद हमारे समझ में बात आयी है कि हर व्यक्ति जन्म से ही न्याय का याचक है। सही कार्य-व्यवहार करना चाहता ही है। सत्य वक्ता होता ही है।

आधार पर शिक्षा में क्या होना चाहिए ? सत्य बोध होना चाहिए, सही कार्य-व्यवहार करने के लिए अभ्यास होना चाहिए, विधि होनी चाहिए, न्याय प्रदायी क्षमता स्थापित होनी चाहिए । तीनों चीजें ही शिक्षा-संस्था में हो सकती हैं और तब मानव परंपरा अपने आप बन जाती है । इससे पहले मानव परंपरा बनेगी नहीं । मानव परंपरा की शुरूआत न्याय से ही करना पड़ेगा । न्याय के लिए मुख्य मुद्दा है नैसर्गिक संबंध जो शाश्वत है एवं मानव संबंध निरंतर है । जब मानव कोई गलती कर लेता है तब मार्गदर्शन के लिए कहाँ जाता है ? हमने देखा है परिवार में कोई व्यक्ति जो न्याय को सत्यापित किया तो वो मार्गदर्शन देगा । परिवार में न हो तो गांव में कोई होगा जो मार्गदर्शन देगा । गांव में भी न हो तो देश धरती में कोशिश करेगा यह सहज प्रवृत्ति है । यह स्वाभाविक है कि हर मानव में कहीं न कहीं सुधार की प्रवृत्ति है । संसार में परिवर्तन चाह रहे हैं ऐसा तो गवाही हो चुकी है । क्या परिवर्तन चाहिए यह पकड़ में नहीं आता रहा, उसके लिए यह प्रस्ताव है । शिक्षा-संस्कार से ही लोक व्यापीकरण होगा । शिक्षा में भी मानवीय शिक्षा को प्रावधानित किया जाना चाहिए ।

यह स्वाभाविक है कि हर मानव में कहीं न कहीं सुधार की प्रवृत्ति है । संसार में परिवर्तन चाह रहे हैं ऐसा तो गवाही हो चुकी है । क्या परिवर्तन चाहिए यह पकड़ में नहीं आता रहा, उसके लिए यह प्रस्ताव है । शिक्षा-संस्कार से ही लोक व्यापीकरण होगा । शिक्षा में भी मानवीय शिक्षा को प्रावधानित किया जाना चाहिए ।

शिक्षा में भी मानवीय शिक्षा को प्रावधानित किया जाना चाहिए । हर व्यक्ति को न्यायपूर्वक जीकर प्रमाणित होने के लिए हमको समझदारी को देना ही पड़ेगा । इसके लिए शिक्षा में विज्ञान के साथ चैतन्य का भी अध्ययन कराना होगा । चैतन्य को हम समझे नहीं, तो अस्तित्व हमको समझ में आ नहीं सकता और अस्तित्व नहीं समझे तो व्यवस्था कैसे समझ में आयेगी ? अस्तित्व को समझने वाला जीवन (चैतन्य) ही है । इसलिए चैतन्य वस्तु का भी अध्ययन शिक्षा में समावेश होना जरूरी है ।

मनोविज्ञान में संस्कार पक्ष (समझदारी) का समावेश होना चाहिए, मानव संचेतना का समावेश, पहचान होना चाहिए । मानव संचेतना में संवेदनशीलता, संज्ञानशीलता दोनों वैभवित है । दर्शनशास्त्र को प्रमाणिकता के साथ पढ़ाना चाहिए । जब प्रमाणिकता के साथ पढ़ायेगे तो मानवता विधि ही आयेगी, भौतिक और आध्यात्मिक विधि नहीं । अतः मानव समझदार हो सकता है, समझदारी के लिये अस्तित्व सहज समीचीन है । प्रमाणों के बारे में जो अनुभव किया है वह यह है कि मैं जो समझा हूँ, सीखा हूँ, किया हूँ, उसको समझाने, सिखाने और कराने में प्रमाणित होता हूँ । इन तीनों विधा में हमें प्रमाणित होना जरूरी है । चौथा और कोई प्रकार नहीं है । समझने में परिपूर्ण होना जरूरी है । सीखने, करने में थोड़ा कमी चल सकती है । अभी तक हम सीखने, करने-कराने का काम बहुत अच्छे से कर लिये हैं किन्तु समझने के क्रम में शून्य हैं । सीखने-सिखाने, करने-कराने को ही हम सर्वोपरि मूल्य बताते हैं । इससे न कोई समाधान मिला न मानव को कोई राहत ही मिला, कहीं न कहीं हम फंसते ही रहे ।

देवी-देवता, ईश्वर को समझने के चक्कर में मनुष्य के अध्ययन को तिलांजली दे दिया । भौतिकवादी विधि में भी मनुष्य को छोड़ दिया, यंत्र को पकड़ लिया अर्थात् यंत्र प्रमाण हो गया । आदर्शवाद में ग्रंथ, किताब, वांडमय प्रमाण हो गया और भौतिकवाद में यंत्र प्रमाण हो गया ।

अतः अब मनुष्य के अध्ययन की आवश्यकता आ गई । मानव के अध्ययन के बाद ही समझदारी में प्रमाणित होना बनता ही है । आदर्शवादी विधि और भौतिकवादी विधि में मानव कहीं न कहीं पीछे छूट गया । आदर्शवादी विधि में देवी-देवता, ईश्वर को सर्वोपरि माना और मानव पीछे रह गया । देवी-देवता, ईश्वर को समझने के चक्कर में मनुष्य के अध्ययन को तिलांजली दे दिया । भौतिकवादी विधि में भी मनुष्य को छोड़ दिया, यंत्र को पकड़ लिया अर्थात् यंत्र प्रमाण हो गया । आदर्शवाद में ग्रंथ, किताब, वांडमय प्रमाण हो गया और भौतिकवाद में यंत्र प्रमाण हो

गया। इस तरह से आदमी का अवमूल्यन हो गया और भ्रम के चपेट में फंसकर भ्रम का ही पूरक हो गया। इस तरह मनुष्य भ्रम में फंसकर कुंठित हुआ, पीड़ित हुआ, प्रताड़ित हुआ। अब मनुष्य का उद्धार कैसे हो ? उद्धार का आश्वासन तो पहले भी सभी गद्दी देते रहे हैं किन्तु उद्धार का प्रमाण न हो तो ऐसा कितने दिन चलेगा।

यहाँ मनुष्य के उद्धार का मूल स्रोत है समझदारी। सबसे बड़ी गद्दी है शिक्षण संस्था। उसमें विज्ञान के साथ चैतन्य का अध्ययन होना चाहिये। चैतन्य के अध्ययन के बिना सह-अस्तित्व का अध्ययन कैसे होगा ? ये दोनों भाग शिक्षा संस्थानों में, शिक्षा वाङ्मय में, शिक्षा प्रक्रिया में अछूता है। दूसरा, मनोविज्ञान में मनुष्य के अध्ययन के लिये मानव संचेतना समझ में आता है, प्रमाणित हो जाता है, आवश्यकता भी समझ में आती है। इसलिये, संस्कार पक्ष का अध्ययन मनोविज्ञान में होना चाहिये। तीसरा, दर्शन शास्त्र के साथ प्रमाणिकता होनी चाहिए। अभी तक हम मानते रहे हैं कि मानव पढ़ा और पढ़कर सुनाया तो विद्वान हो गया। जबकि ये विद्वान हुआ नहीं रहता। विद्वान, समझदारी का स्वरूप है और विद्या अपने आप में अस्तित्व सहज है तो अस्तित्व को समझे बिना, जीवन को समझे बिना, मानवीयतापूर्ण आचरण के बिना विद्वान होता नहीं। ये समझ में आता है विचार शैली भी बनता है, योजना भी बनता है, कार्ययोजना भी बनता है फलस्वरूप प्रमाणित भी होता है। अगर हम समझे नहीं तो विचार शैली कहाँ से लाये। बिना समझे जो विचार शैली बनी है, एक है सुविधा संग्रह के लिए और दूसरी है त्याग, अपरिग्रह, विरक्ति, भक्ति। इसमें भी करोड़ों लोग अपने को लगाए और अपनी धैर्य, साहस, निष्ठा का परिचय दिये। इन दोनों से

बिना समझे जो विचार शैली बनी है, एक है सुविधा संग्रह के लिए और दूसरी है त्याग, अपरिग्रह, विरक्ति, भक्ति। इसमें भी करोड़ों लोग अपने को लगाए और अपनी धैर्य, साहस, निष्ठा का परिचय दिये। इन दोनों से समाज का कोई रूपरेखा देखने को नहीं मिला।

समाज का कोई रूपरेखा देखने को नहीं मिला। मनुष्य हमेशा अथक परिश्रम करते आया है किन्तु लक्ष्य व दिशा विहीन था। मैंने जो प्रयास किया वह केवल हमारे प्रश्नों के उत्तर के लिए था। हमें स्वर्ग मिलेगा, पैसा मिलेगा, संग्रह मिलेगा ऐसा कोई लक्ष्य नहीं था हमारे सामने। एक ही बात थी हमारे पास प्रश्न है तो उसका उत्तर मिलेगा ही। मैं योग और संयोग शब्दों का अर्थ बता दूँ। योग का अर्थ है - मिलन। जैसे हम कहीं जा रहे हैं रास्ते में कोई पत्थर, आदमी मिल गया तो योग कहेगे। संयोग का अर्थ है सम्पूर्णता के अर्थ में मिलन। पूर्ण का अर्थ है मनुष्य का व्यवस्था में जीना। परमपूर्ण का अर्थ है मनुष्य का प्रमाणिक हो जाना। व्यवस्था में जीना, प्रमाणिक हो जाना मनुष्य की चाहत है। किन्तु वह नहीं मिलने पर जो मजबूरी है उस पर चलकर परंपरा के अनुसार ढल जाता है। योग-संयोग सदा-सदा रहता ही है। पूर्णता के लिए कई प्रयास हुए हैं (सफलता एक अलग बात है)। मनुष्य ने पूर्णता के लिए बहुत कुर्बानी दी है। कुर्बानियों का परिणाम तो होता ही है। जब किसी चीज को तोड़ते हैं तब सफलता तो आखिरी हथौड़े में दिखती है किन्तु उसके पहले लगे सभी हथौड़े नहीं पड़ते तो उस हथौड़े से सफलता नहीं मिलती। सभी चोटों का सफलता में हाथ है। कोई सफलता मुझे मिली तो इसमें पहले जो प्रयास हुए उनका भी योगदान है इस प्रकार संपूर्ण मानव के योगदान के फलस्वरूप यह घटना-घटित हुई ऐसा मैं समझता हूँ।

इससे बड़ा लाभ हुआ कि अहंता मेरे पास नहीं हुआ। मेरे पास अहंता के साथ प्रस्तुत होने वाले लोग भी बहुत कम आये हैं। कितनी भी अहंता को लेकर आने वाले लोगों को दो-तीन सीढ़ी के बाद अहंता का शमन होता हुआ देखा गया। मेरे साथ तो सारे मिलन सज्जनता

अहंता मेरे पास नहीं हुआ। मेरे पास अहंता के साथ प्रस्तुत होने वाले लोग भी बहुत कम आये हैं। कितनी भी अहंता को लेकर आने वाले लोगों को दो-तीन सीढ़ी के बाद अहंता का शमन होता हुआ देखा गया। मेरे साथ तो सारे मिलन सज्जनता के साथ स्वाभाविक रूप से हुआ।

के साथ सादगी के साथ स्वाभाविक रूप से हुआ। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि मेरे से मिलने वाले हर सज्जन ने हमारी बात को स्वीकार कर लिया। बहुत से लोग नहीं स्वीकारते हैं इनका भी हम सम्मान करते हैं। इनकी गलती नहीं है उनके ऊपर परंपरा को लाद दिया गया है। इसलिए कोई स्वीकारे या नहीं मैं खुशी में रहता हूँ। कालक्रम संयोग हरेक के लिए सद्बुद्धि का अंकुर रखा ही है। वह कब पल्लवित होगा, पुष्पित होगा ये हम नहीं कह सकते। हर आदमी शुभ चाहता ही है। शुभ चाहने के मूल में संभावनाओं को और समीचीन किया जाए यह मैं चाहता हूँ। संयोग जब होते हैं आदमी समाधान के अर्थ में, व्यवस्था के अर्थ में, अखण्ड समाज के अर्थ में मिलते हैं। एक ही विचार के लोगों के मिलने से ही संयोग नहीं बनता। जैसे दो चोर, दो डाकू, दो अपराधी मिलना समाधान, व्यवस्था के अर्थ में नहीं है इसलिए यह संयोग नहीं है।

न्यायपूर्वक हमसे जीना बना तो हमारी प्रमाणिकता की स्थली बनी, हमारा परिवार। परिवार जनों की आँखों में हम ठीक चल रहे हैं यह आ जाता है। परिवार में न्यायपूर्वक चलने के बाद जितने हमारे मित्र परिवार है उनके बीच सटीकता से हमारी पहचान देख पाता हूँ। उसके बाद न्यायपूर्वक जीना हमारे अधिकार में हो गया तो जो आगंतुक आते हैं, उन पर भी हमारी पहचान साबित करने में समर्थ हो पाता हूँ।

हर मानव अपनी सार्थकता और सफलता को अपनी चाहत में बनाये ही रखता है। हमारी समझदारी है, हमारी नेक चाहत का स्रोत। इस स्रोत को हम कभी भी भुलावा नहीं दे सकते। शुभ हर

न्यायपूर्वक हमसे जीना बना तो हमारी प्रमाणिकता की स्थली बनी, हमारा परिवार। परिवार जनों की आँखों में हम ठीक चल रहे हैं यह आ जाता है। परिवार में न्यायपूर्वक चलने के बाद जितने हमारे मित्र परिवार है उनके बीच सटीकता से हमारी पहचान देख पाता हूँ। उसके बाद न्यायपूर्वक जीना हमारे अधिकार में हो गया।

व्यक्ति को स्वीकार है हर व्यक्ति की चाहत है और शुभ घटित होने के लिए इंतजार हम सब कर ही रहे हैं। इंतजार करते समय संबंध का मुद्दा आता है। संबंधों की पहचान उसमें निहित प्रयोजन (मूल्य) की पहचान ही है। यही अध्ययन है। प्रयोजन पहचानने के बाद मानव स्वाभाविक रूप में निष्ठान्वित होता है और फिर पारंगत होता है। पारंगत होने के बाद फलित होता ही है। यही विधि है सफलता की जो काफी सरल है। अभ्युदय सभी संबंधों के साथ जुड़ा ही रहता है। संबंधों का प्रयोजन अभ्युदय है अर्थात् समाधान और सुख के अर्थ में है। समाधान के अर्थ में ही हम प्रेम करते हैं, समाधान के अर्थ में ही हम कृतज्ञ होते हैं, मैत्री करते हैं, विश्वास करते हैं, मानव व्यवहार में प्रशस्त रहते हैं और सुख का अनुभव करते हैं। मूल्यों का स्वरूप बनता है ममता, वात्सल्य, विश्वास, स्नेह, कृतज्ञता, गौरवता, प्रेम, श्रद्धा, सम्मान। हमारे अभ्युदय के लिये जहाँ से भी सहायता मिली हो, जिससे भी मिली हो, इसकी स्वीकृति का नाम है “कृतज्ञता”। कृतज्ञ के साथ अन्य मूल्य अपने आप सार्थक होने लगता है। कृतज्ञता के पश्चात स्नेह, प्रेम, विश्वास सार्थक होता

है। ऐसा कोई आदमी नहीं मिलता जिससे कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में सहायता न मिली हो। सबकी सहायता के साथ आदमी बड़ा होता है, समर्थ बनता है और प्रमाणित हो जाता है। इस क्रम में जितने भी संबंध है (सात संबंध) उनमें मूल्य ही मूल्यांकित होने पर संबंधों की निरंतरता होती है। संबंधों में मूल्य मूल्यांकित न होने पर संबंधों की निरंतरता होती नहीं है। सामान्य क्रम में भी जिनको हम अपना संबंधी मानते हैं उनके साथ अच्छे ढंग से प्रस्तुत होते ही हैं। परंपरागत ढंग से हम संबंधों को बल, धन, बुद्धि, आयु के आधार पर

कृतज्ञ के साथ अन्य मूल्य अपने आप सार्थक होने लगता है। कृतज्ञता के पश्चात स्नेह, प्रेम, विश्वास सार्थक होता है। ऐसा कोई आदमी नहीं मिलता जिससे कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में सहायता न मिली हो। सबकी सहायता के साथ आदमी बड़ा होता है, समर्थ बनता है और प्रमाणित हो जाता है।

पहचानते हैं। जबकि संबंध पहले अभ्युदय के अर्थ में है, दूसरे पोषण के अर्थ में है, तीसरे संरक्षण के अर्थ में है, चौथे उपयोगिता के अर्थ में, पाँचवें सदुपयोगिता के अर्थ में, छठवें प्रयोजन के अर्थ में। संबंधों के लिए सर्वोपरि वरीयता प्रमाणिकता के अर्थ में है। प्रमाण के आधार पर हर कोई संतुष्ट होता है। मूल्य जीवन सहज रूप में उद्गमित होते हैं। जैसे : हम और आप जब मिलते हैं तो स्वाभाविक रूप से मूल्य बहने से हमारे आपके बीच विश्वास मूल्य शुरू हो जाता है। इस विधि से हम संबंधों में मूल्यों को पहचानने, मूल्यांकन करने और उभयतृप्ति पाने में सक्षम हो जाते हैं। इससे बड़ा लाभ क्या हो गया ? अभी तक भय और प्रलोभन के आधार पर संबंधों को पहचानते रहे; उसके स्थान पर मूल्य और मूल्यांकन करने की स्थिति में आ जाते हैं। भय और प्रलोभन कोई मूल्य ही नहीं है तो मूल्यांकित क्या होगा ? भय के साथ प्रलोभन, प्रलोभन के साथ भय, थोड़ी देर के लिये चुप होने वाली बात है। रोग तो वहीं का वहीं रहता है। न्यायालयों में भी न्याय की बात पूरी हुई नहीं क्योंकि भय और प्रलोभन न्याय का आधार हो ही नहीं सकता। शताब्दियों से भय और प्रलोभन के आधार पर ही एक-दूसरे को राजी करते रहे हैं। पर अभी तक कोई व्यवस्था दे ही नहीं पाये।

मनुष्य अभी तक मूल्यों के पास गया ही नहीं। मूल्यों के पास गया होता तो मूल्य अभिव्यक्त होता, मूल्य प्रमाणित होता, मूल्यांकित होता और स्वाभाविक रूप में न्याय होता। न्यायालयों में फैसला होता है न्याय नहीं। इन फैसलों से एक पक्ष भयवश एक पक्ष प्रलोभनवश

न्यायालयों में भी न्याय की बात पूरी हुई नहीं क्योंकि भय और प्रलोभन न्याय का आधार हो ही नहीं सकता। शताब्दियों से भय और प्रलोभन के आधार पर ही एक-दूसरे को राजी करते रहे हैं। पर अभी तक कोई व्यवस्था दे ही नहीं पाये।

सहमत होता है। उभयतृप्ति इसमें कभी हुआ नहीं, हो ही नहीं सकता है। न्याय को पाने में हम सर्वथा असमर्थ रहे हैं। उसके बावजूद भी विकास का दावा करते हैं। विकास का क्या अर्थ होता है आप ही सोच लीजिए। भय और प्रलोभन से हर मानव छूटना चाहता है ये नियति सहज है। इससे मानव का भी कल्याण है। नैसर्गिकता का भी कल्याण है। इस तरह प्रयोजन के आधार पर संबंध है। प्रयोजन समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व है इसके लिये प्रक्रिया है व्यवस्था में जीना। व्यवस्था में जीने का मतलब है कि पाँचों आयामों में भागीदारी करना। पाँच आयाम है :

1. शिक्षा-संस्कार,
2. न्याय- सुरक्षा,
3. स्वास्थ्य-संयम,
4. उत्पादन-कार्य,
5. विनिमय-कोष।

इस विधि से हम परिवार में, व्यवस्था में जीने से पाँचों आयामों में भागीदारी करने से समग्र व्यवस्था में भागीदार होते हैं। इस तरह से मानव के लिये निरंतर उमंग, खुशहाली, अटूट साहस बन जाता है। न्याय के बाद आता है, धर्म। धर्म का मतलब बोध जो बुद्धि में होता है अर्थात् समाधान। समाधान का मतलब ही मानव धर्म है, व्यवस्था में जीना ही मानव धर्म है, यही अभ्युदय है। अव्यवस्था में मानव जीता है तो समस्या से ग्रसित हो जाता है व्यवस्था में जब जीता है समाधानित रहता है। आदमी समस्याग्रस्त रहना चाहता नहीं है। अतः आदमी समाधानित रहना चाहता है। समाधान = सुख, मानव सुखधर्म है। समस्या = दुख, समस्या को आदमी चाहता नहीं। भय और प्रलोभन के आधार पर समाधान होता नहीं और सारा संसार तुला हुआ है कि भय और प्रलोभन के आधार पर समाधान हो जाए। भय और प्रलोभन के आधार पर व्यवस्था को समीकरण करने के लिए हम आज भी शिक्षण प्रशिक्षण

न्याय के बाद आता है, धर्म। धर्म का मतलब बोध जो बुद्धि में होता है अर्थात् समाधान। समाधान का मतलब ही मानव धर्म है, व्यवस्था में जीना ही मानव धर्म है, यही अभ्युदय है। अव्यवस्था में मानव जीता है तो समस्या से ग्रसित हो जाता है व्यवस्था में जब जीता है समाधानित रहता है।

करते हैं जबकि इससे व्यवस्था हो नहीं सकती। कहीं एक जगह पर भय और प्रलोभन के आधार पर कुछ बनता है तो उसी क्षण से उसके टूटने का कार्यक्रम शुरू हो जाता है। अतः मूल्य और मूल्यांकन के आधार पर ही व्यवस्था होगी। परिवार व्यवस्था, प्रौद्योगिकी, प्रशासन, राज्य, व्यवस्था सभी स्तर पर व्यवस्था इसी विधि से होगी। व्यवस्था का मतलब यही है मनुष्य अपनी प्रमाणिकता को प्रस्तुत कर सके, न्याय का निर्वाह कर सके और व्यवस्था में भागीदारी कर सके।

परिवार में, हर आदमी में, हर बच्चे में समझदारी का सूत्र देना ही शिक्षा-संस्कार व्यवस्था है। इसे समझदारी का लोकव्यापीकरण करना भी कह सकते हैं। पहले आपको बताया दर्शन; दर्शन के बाद विचार; विचार के बाद शास्त्र; शास्त्र के बाद योजना। योजना में एक है जीवन विद्या योजना जिसमें मनुष्य परिवार मानव होने के लिए पूरी गुंजाईश है। इस समझ से आदमी परिवार में व्यवस्था के रूप में जी सकता है। दूसरी योजना है मानवीय शिक्षा या शिक्षा का मानवीकरण। इसमें बच्चों के लिए शिक्षा व्यवस्था है। ऐसी शिक्षा को हम एक स्कूल में (बिजनौर, उ.प्र.) प्रयोग किये। यह पाँच वर्ष का अनुभव है। जीवन विद्या के आधार पर शिक्षा का मानवीकरण करने गये उसका क्या प्रभाव पड़ा वहाँ देखा गया। लोग कहते रहे हैं कि आदमी के ऊपर वातावरण का प्रभाव पड़ता है जिसे हम नकारते रहे। यदि वातावरण का प्रभाव पड़ता तो हम अनुसंधान कैसे कर पाते? इस स्कूल से यह प्रमाण मिलने लगा है कि बच्चों का प्रभाव परिवार पर एवं उनके परिवार वालों का प्रभाव वातावरण पर पड़ने लगा है। बच्चे जीवन के रूप में अपने को पहचानने लगे और व्यवस्था में जीना अति आवश्यक है इसे

परिवार में, हर आदमी में, हर बच्चे में समझदारी का सूत्र देना ही शिक्षा-संस्कार व्यवस्था है। इसे समझदारी का लोकव्यापीकरण करना भी कह सकते हैं। पहले आपको बताया दर्शन; दर्शन के बाद विचार; विचार के बाद शास्त्र; शास्त्र के बाद योजना।

स्वीकारने लगे। इसके फलस्वरूप बहुत से बच्चे टी. वी. आदि में दिखाये जाने वाले चीजों का मूल्यांकन करने लगे और यह सब निस्सार है ऐसा समझने लगे। साथ ही गाँव में एक परिवार में दूसरे परिवार के साथ बैर-भाव था, मारपीट, मुकदमा होता था। वह भी धीरे-धीरे शमन होने लगा। अब उन गाँवों में मेरी जानकारी के अनुसार झगड़ा-झंझट नहीं है। इसी को हम कहते हैं बच्चों का वातावरण पर प्रभाव पड़ा और इसी के अनुसार हम कहते हैं कि इस शिक्षा में दम-खम है।

शिक्षा के मानवीकरण में हम विज्ञान के साथ चैतन्य पक्ष का अध्ययन करायेगे। चैतन्य पक्ष का मतलब है जीवन। जीवन का, जीवन जागृति का अध्ययन करायेगे। रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना का अध्ययन करायेगे। मनुष्य के लिए रचना-विरचना की पूरकता तथा मनुष्य इस संसार के लिए कैसे पूरक होगा, यह सब अध्ययन करायेगे। इसके बाद दर्शन शास्त्र में क्रिया पक्ष का अध्ययन करायेगे। क्रिया पक्ष का अर्थ है मनुष्य की समझदारी के लिए दर्शन है। समझदारी का प्रमाण होना चाहिए। समझदारी के साथ हम अपने पहचान को बनाते हैं। तो सह-अस्तित्व ही पहचान में आता है मूल्यों का निर्वाह करना ही बनता है और मूल्यांकन में उभयतृप्ति ही स्वाभाविक रूप में बनता है। व्यवस्था एक शाश्वत सत्य है। शाश्वत सत्य किस अर्थ में है? - अस्तित्व में हर एक अपने त्व सहित व्यवस्था है : जैसे बेल का झाड़ उसमें बेलत्व समाया रहता है। पीपल का झाड़ अपना आचरण बनाए रहता है। पीपल के पेड़ में पीपल के फल और पीपल के बीज होंगे, उसी के गुण, धर्म होंगे यही उसका आचरण है। इसी तरह पूरा वनस्पति संसार, जीव संसार का आचरण निश्चित है और ये अपने-अपने

शिक्षा के मानवीकरण में हम विज्ञान के साथ चैतन्य पक्ष का अध्ययन करायेगे। चैतन्य पक्ष का मतलब है जीवन। जीवन का, जीवन जागृति का अध्ययन करायेगे। रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना का अध्ययन करायेगे। मनुष्य के लिए रचना-विरचना की पूरकता तथा मनुष्य इस संसार के लिए कैसे पूरक होगा, यह सब अध्ययन करायेगे।

आचरण में प्रकाशित हैं। इसे ही कहते हैं त्व सहित व्यवस्था। मानव का आचरण अभी तक निश्चित नहीं हो पाया, क्योंकि मानव अभी तक व्यवस्था में जी नहीं पाया। अभी तक हम व्यवस्था नहीं पाये हैं किन्तु व्यवस्था की जरूरत है यहाँ पर आ गये हैं। व्यवस्था पाने के लिए हमको अपने त्व सहित व्यवस्था में जीना पड़ेगा। त्व क्या है? मानवीयता पूर्ण आचरण। मानवीयता में मूल्य, चरित्र, और नैतिकता है। मूल्य का प्रमाण है संबंध, मूल्य मूल्यांकन उभयतृप्ति। जो परिवार में होना ही है। उभयतृप्ति से कम में कोई परिवार है नहीं उससे ज्यादा की जरूरत नहीं है। यह घटित होने के लिए स्वयं स्फूर्त विधि से आदमी मूल्यों में जियेगा। व्यवस्था में जीने से चरित्र की बात आयेगी। चरित्र को स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में पहचाना गया है। नैतिकता (तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा) से अभयता बनती है। इस प्रकार से मानवीयता पूर्ण आचरण है। इसमें बहुत अच्छे ढंग से मनुष्य आश्वस्तता पूर्वक जी सकता है।

इसके बाद आती है मानव की परिभाषा : “मनाकार को साकार करने वाले को मानव कहते हैं।” अर्थात् मानव के मन में जो भी आता है (यथा यंत्र बनाना, घर बनाना आदि) उसको साकार करने वाला तथा मनः स्वस्था का आशावादी है अर्थात् सुख की आशा में ही जीता रहता है। मनुष्य सुखधर्मी है। इस तरह से मूल्य, नैतिकता, चरित्र का स्वरूप समझ में आता है। परिभाषा के अनुसार जहाँ तक मनाकार को साकार करने वाली बात है उसको मनुष्य पा गया है। मनाकार को साकार करने वाली बात दो विधा में होता है। एक सामान्य आकांक्षा (आवास, आहार, अलंकार) और दूसरा महत्वाकांक्षा (दूरध्वन,

संविधान में मानवीयता पूर्ण आचरण को मूल्यांकित करने की कोई व्यवस्था नहीं है। शक्ति केन्द्रित किसी भी संविधान में मानवीयता पूर्ण आचरण को प्रमाणित करने का प्रावधान होता ही नहीं है क्योंकि यह मानवीय संविधान होता ही नहीं है। इसलिए इसमें मानवीय आचरण हो ही नहीं सकता।

दूरदर्शन, दूरगमन)। जहाँ तक आचरण की बात है वह कहीं नहीं मिलता है। न तो शिक्षा में, न संविधान में मिलता है। संविधान में मानवीयता पूर्ण आचरण को मूल्यांकित करने की कोई व्यवस्था नहीं है। शक्ति केन्द्रित किसी भी संविधान में मानवीयता पूर्ण आचरण को प्रमाणित करने का प्रावधान होता ही नहीं है क्योंकि यह मानवीय संविधान होता ही नहीं है। इसलिए इसमें मानवीय आचरण हो ही नहीं सकता। मानवीयतापूर्ण आचरण को कोई प्रमाणित कर नहीं पाये। ऐसा मूल्यांकित करने का साहस जुटा नहीं पाये, ऐसे समझदारी को जोड़ नहीं पाये। इन कमियों को पूरा किये बिना मानव सुख से जी नहीं पायेगा और लड़ाई झगड़ा करता ही रहेगा। इस कचड़े से छूटने के लिए समझदारी ही एक उपाय है। इसके लिए शिक्षा का मानवीकरण करना अति आवश्यक है। शिक्षा में विज्ञान के साथ चैतन्य प्रकृति का, दर्शन के साथ क्रिया पक्ष का, मनोविज्ञान के साथ संस्कार पक्ष का, भूगोल और इतिहास में मानव तथा मानवीयता का समावेश करेंगे। इस ढंग से शिक्षा में मानवीयता के समावेश होने से मानव की प्रवृत्ति सहज रूप से व्यवस्था में जीने की, अपने को प्रमाणित करने की होगी। अपने पहचान के साथ समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व में जीने के अवसर आवश्यकता सफलता के स्थान पर हम पहुँच जायेंगे। इसलिए शिक्षा-संस्कार मानवीयता के साथ ही पूर्ण होता है, दूसरी विधि से नहीं होता। अभी हम जिन संस्कारों की बात करते हैं वे हमारी मान्यताओं पर आधारित हैं उनमें सार्वभौमता नहीं है।

तीसरा बिन्दु हैं ‘सत्य’। सत्य क्या है? अस्तित्व, सह-अस्तित्व के रूप में समझ आना ही सत्य है। सत्य समझ में आने के बाद

सत्य क्या है ? अस्तित्व, सह-अस्तित्व के रूप में समझ आना ही सत्य है। सत्य समझ में आने के बाद व्यवस्था समझ में आती है। अस्तित्व को सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में ही अध्ययन किया जाता है। मनुष्येतर प्रकृति और मानव एक दूसरे के पूरक है।

व्यवस्था समझ में आती है। अस्तित्व को सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में ही अध्ययन किया जाता है। मनुष्येत्तर प्रकृति और मानव एक दूसरे के पूरक हैं। इस विधि से जीने की कला को विकसित कर लेने पर मानवीय व्यवस्था ही होती है। यह समझ लेने के बाद हम न्याय में ही जियेंगे, व्यवस्था में ही जियेंगे, परिवार में, व्यवहार में प्रमाणिकता को ही प्रमाणित करेंगे और अन्यथा कुछ भी नहीं करेंगे।

इस ढंग से आश्वस्त, विश्वस्त, समृद्ध जगह में पहुँचते हैं। अभी हमें विज्ञान यह कहकर पढ़ाया जाता है कि जो भी है अव्यवस्था है, अनिश्चित है। इसे पढ़ने के फलस्वरूप हर विद्यार्थी अपने को अव्यवस्था में होना स्वीकार लेते हैं। फलस्वरूप अव्यवस्था को फैलाने में भागीदारी करता है इसका उदाहरण ये पूरी धरती है। इस धरती में ताप बढ़ रहा है। कारण क्या है? धरती के अन्दर से कोयला, पेट्रोलियम निकालने से ताप बढ़ रहा है। कैसे बढ़ गयी, क्यों बढ़ गयी ये वो भी जानते हैं हम भी जानते हैं। कोयला और पेट्रोलियम ही ऐसे पदार्थ हैं जो ताप को अपने में हजम करते हैं। धरती में ताप को हजम करने वाले पदार्थ को निकाल लिया तो धरती का ताप बढ़ना ही है। ताप बढ़ने से क्या हुआ समुद्र का जल-स्तर बढ़ने लगा। पानी का सतह कितना बढ़ सकता है? तो हम जहाँ बैठे हैं वहाँ से दो तीन सौ फीट ऊँचा पानी हो सकता है। कुछ पर्वतों की चोटियाँ बचती हैं। इस ढंग से हम फँस गये। इसको ठीक करने के लिए सब बड़े-बड़े देश मिलकर आव्हान करते हैं कि आओ सब मिलकर ठीक करें और शुरूआत किसने किया यह इतिहास स्पष्ट करता है। बिना समझे ईंधन के लिए कोयला और पेट्रोलियम पदार्थ उपयोग किया यह धरती के साथ हुई ज्यादाती है और इसकी

अभी हमें विज्ञान यह कहकर पढ़ाया जाता है कि जो भी है अव्यवस्था है, अनिश्चित है। इसे पढ़ने के फलस्वरूप हर विद्यार्थी अपने को अव्यवस्था में होना स्वीकार लेते हैं। फलस्वरूप अव्यवस्था को फैलाने में भागीदारी करता है इसका उदाहरण ये पूरी धरती है। इस धरती में ताप बढ़ रहा है। कारण क्या है?

भरपाई आगे होगी कि नहीं इसके (ज्यादती) रुकने के बाद ही इसका परीक्षण होगा। यह कैसे रुकेगा इसके बारे में आगे बात करेंगे। धरती पर मनुष्य अधिक तापमान पर (50° डिग्री सेन्टीग्रेड) पर भी निवास करते हैं और कम तापमान (-20° डिग्री सेन्टीग्रेड) पर भी। यह अंतर लगभग 70° डिग्री सेन्टीग्रेड तक है। इतने तापमान अंतर में रहने वाले आदमियों के शरीर का तापमान एक ही रहता है। ऐसा क्यों? बाहर के ताप अधिक और कम होने से भी शरीर के ताप को संतुलित बनाये रखने के लिए शरीर में वह सब द्रव्य है। इसी प्रकार धरती के ताप को भी संतुलित बनाये रखने के लिए धरती के अंदर कोयला और पेट्रोलियम पदार्थ हैं।

तो अब मुद्दा यह है कि कोयला और पेट्रोलियम को निकाले जाने से रोका कैसे जाये? एक उपाय है हमारी धरती पर इतनी नदियाँ बहती हैं जिनके प्रवाह शक्ति से धरती पर जितनी बिजली की आवश्यकता है उससे 50 गुनी बिजली उपलब्ध हो सकती है। इसके लिए प्रवाह बल से बिजली पैदा करने वाले संयंत्र को बनाने की आवश्यकता है। दूसरे कुछ यंत्र ऐसे हैं जो तेल से ही चलेगे ऐसे यंत्रों के लिए वनस्पति तेल से चलने वाले इंजिन बनाने होंगे। इसके लिए धरती पर तैलीय वनस्पति होती है और अधिकाधिक मात्रा में उसे उगाया जा सकता है। ऐसा मैं सोचता हूँ। सौर ईंधन की ओर लोगों का ध्यान है ही और अधिकाधिक आतुरता से ध्यान देने की आवश्यकता है। सौर ईंधन को और भी व्यावहारिक यंत्रों, संयंत्रों में उपयोग लाने की जरूरत है। इस तरह से धरती पर जितनी ऊर्जा की आवश्यकता है उससे ज्यादा ऊर्जा धरती की सतह पर उपलब्ध होने की बात समझ में आती है। इस तरह से कोयला और पेट्रोलियम का उपयोग बंद किया जाये, उसके

तो अब मुद्दा यह है कि कोयला और पेट्रोलियम को निकाले जाने से रोका कैसे जाये? एक उपाय है हमारी धरती पर इतनी नदियाँ बहती हैं जिनके प्रवाह शक्ति से धरती पर जितनी बिजली की आवश्यकता है उससे 50 गुनी बिजली उपलब्ध हो सकती है। इसके लिए प्रवाह बल से बिजली पैदा करने वाले संयंत्र को बनाने की आवश्यकता है।

स्थान पर वनस्पति तेल, प्रवाह शक्ति और सूर्य ताप का उपयोग किया जा सकता है उसके पश्चात यह परीक्षण किया जा सकेगा कि अभी तक जो गढ़े किये गये हैं उसे धरती स्वयं पाटने में कितनी सक्षम है।

तीसरे एक और तलवार मानव पर लटक रही है। इस धरती पर जब भी पानी बनने की घटना हुई होगी, ऐसी घटना के मूल में यदि शोध किया जाए तो ब्रम्हाण्डीय किरणों के संयोग से यह घटना घटित हुई है ब्रम्हाण्डीय किरणें ही इस घटना का एक मात्र स्रोत है अब उसकी निरंतरता बन चुकी है। अभी धरती के वातावरण का क्षय हुआ है। इससे ऐसी संभावना बन सकती है कि वही ब्रम्हाण्डीय किरणें यदि विपरीत विधि से प्रभाव डालें तो धरती पर से पानी समाप्त हो सकता है। जिस-जिस स्रोत से धरती का आवरण क्षतिग्रस्त हुआ है विज्ञानी उसे पता लगा लिए हैं। केवल स्रोत पता लगाने से तो क्षति ठीक होगी नहीं, बनाने की आवश्यकता है। बनाने की विधा में यही बात आती है धरती के साथ जो-जो अत्याचार किया है उसे रोकना पड़ेगा। खनिज तेल, कोयला और विषाक्त गैसों और तरल पदार्थों को जो मानव ने युद्ध की सामग्री के लिए बनाया है उसी से धरती का सुरक्षा कवच क्षतिग्रस्त हुआ ऐसा पेपर में पढ़ने आता है। यदि यह सच्चाई है तो इन सब प्रक्रियाओं को रोकना होगा जिससे धरती का वातावरण क्षतिग्रस्त होता है। मानव क्षतिग्रस्त करने के बाद क्षतिपूर्ति का उपाय भी सोचता है, करता है यह बहुत बड़ा गुण है जबकि अन्य जीवों में ऐसा नहीं होता। किन्तु धरती की क्षतिपूर्ति के लिए मानव ने अभी तक कोई कार्य नहीं किया। बल्कि हर दिन और बिगड़ाव देखने को मिलता है। कब तक करेंगे? क्या कभी इस बिगड़ाव को ठीक करने के बारे में कुछ करेंगे?

इस धरती पर जब भी पानी बनने की घटना हुई होगी, ऐसी घटना के मूल में यदि शोध किया जाए तो ब्रम्हाण्डीय किरणों के संयोग से यह घटना घटित हुई है ब्रम्हाण्डीय किरणें ही इस घटना का एक मात्र स्रोत है अब उसकी निरंतरता बन चुकी है। अभी धरती के वातावरण का क्षय हुआ है।

धरती, मानव को सुरक्षित विधि से जीने का विधान बनाती रही है, किन्तु मानव ने अपनी बुद्धि से सारी धरती के साथ विद्रोह किया, धरती पर आक्रमण तथा शोषण किया। आदिकाल से ही मानव धरती के वातावरण को बिगाड़ने में लगा है। विज्ञानी युग के बाद ज्यादा बिगड़ाव हुआ, इसलिए हम संकटग्रस्त हो गये हैं। कोई आदमी नदी में डूबता है तो उभरता भी है ये संभावना रखी हुई है। तो धरती को बचाने की संभावना को हम आचरण करना चाहते हैं कि नहीं, यह हमारे विचारों के ऊपर है। विचारों से परिस्थितियाँ बन जाती हैं अगर चाहते हैं तो परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं, नहीं चाहते हैं तो प्रतिकूल हो जाती है। अपनी बुद्धि भ्रमित होने के कारण वास्तविकता का, प्रकृति के वातावरण की महिमा का मूल्यांकन करने में चूक गये। फलस्वरूप हम विविध प्रकार से क्षतिग्रस्त हुए और प्रकृति को क्षतिग्रस्त किये। क्षतिग्रस्त करते तक हम खुशहाली मनाएं लेकिन स्वयं क्षतिग्रस्त होने की संभावना से डरते भी हैं। यह हुआ विगत का विश्लेषण। मानव संचेतना से यदि मानव व्यवस्था में जीने को तत्पर होता है तो जीवन विद्या एक दूसरे के पास पहुँचता है इसका प्रमाण मिल चुका है। इसको हम एक स्कूल में तैयार कर पायें हैं। इसके शुभ परिणामों को देखते हुए इसके लोकव्यापीकरण की आवश्यकता है।

आदिकाल से ही मानव धरती के वातावरण को बिगाड़ने में लगा है। विज्ञानी युग के बाद ज्यादा बिगड़ाव हुआ, इसलिए हम संकटग्रस्त हो गये हैं। कोई आदमी नदी में डूबता है तो उभरता भी है ये संभावना रखी हुई है। तो धरती को बचाने की संभावना को हम आचरण करना चाहते हैं कि नहीं।

नासमझी के बिना कोई मानव कुकृत्य करता नहीं है। मेरे अनुसार हर व्यक्ति शुभ चाहता है और शुभ के लिए जिम्मेदार है। फलस्वरूप कभी न कभी सर्वशुभ के प्रति जिम्मेदारी महसूस करेगा। यह सर्वशुभ को महसूस करने के अर्थ में ही जीवन जागृति की बात आती है। सुविधा संग्रह से मुक्ति और भक्ति-विरक्ति के स्थान पर

स्वस्थ समाज की रचना के लिए ही समझदारी की बात, जीवन जागृति की बात छेड़ने का मन आया। बुद्धि में होने वाली बोध और संकल्प क्रिया का प्रमाणीकरण तभी हो पाता है जब बुद्धि में न्यायबोध, सत्य बोध, धर्म बोध हो जाए। जब ये तीनों बोध हो जाते हैं तो बुद्धि को सद्बुद्धि कहते हैं। फलस्वरूप सर्वशुभ की जिम्मेदारी को मनुष्य स्वीकार करता है। अस्तित्व को समझने पर सह-अस्तित्व के रूप में नित्य वर्तमान होना हमको बोध होता है। जिसका हम अध्ययन कराते हैं।

इसकी एक झलक गणितीय विधि से विखंडन विधि को पता लगाया। विखंडन विधि को ज्यादा से ज्यादा शक्तिशाली अणुबम बनाने के लिए पता लगाया। एटम बम बनाने का प्रयोजन सिवाए नाश के कुछ हो नहीं सकता। नाश तो जितना किया (जैसे हिरोशिमा) इसके अलावा नाश करने के लिए बार-बार जो प्रयोग किए इससे वातावरण की अधिक क्षति हुई है। ये किया मुट्टी भर लोगों ने, भोगेगे 700 करोड़ों। नाश करने के लिए जो किया उससे सामान्य आदमी क्षतिग्रस्त हुआ, कैसे? गणितीय विधि से 'वर्तमान' शून्य-प्रायः हो जाता है और 'वर्तमान' की तादाद नहीं मिलती है। जबकि है इससे उल्टा, नित्य वर्तमान ही है। वर्तमान के अलावा कुछ होता ही नहीं है। अस्तित्व का सारा वैभव नित्य वर्तमान है जबकि विखंडन विधि से वर्तमान है ही नहीं। इस ढंग से झूठ का पुलिंदा इतना बना चुके हैं कि उससे उभरने के लिए मनुष्य को अपने ऊपर विश्वास करना होगा। जब तक मनुष्य एटम बम पर, तलवार पर, झंडा पर, पत्थर पर विश्वास करेगा तब तक तो आदमी आदमी पर विश्वास करेगा नहीं, यह सच्चाई है और स्वयं पर तब विश्वास होगा जब स्वयं को

विखंडन विधि को ज्यादा से ज्यादा शक्तिशाली अणुबम बनाने के लिए पता लगाया। एटम बम बनाने का प्रयोजन सिवाए नाश के कुछ हो नहीं सकता। नाश तो जितना किया (जैसे हिरोशिमा), नाश करने के लिए बार-बार जो प्रयोग किए इससे वातावरण की अधिक क्षति हुई है। ये किया मुट्टी भर लोगों ने, भोगेगे 700 करोड़ों।

समझेगा। स्वयं को समझने के लिए न्याय, धर्म, सत्य को सटीक समझना होगा। न्याय कहाँ से समझ में आता है संबंध के आधार पर, धर्म कहाँ से आता है व्यवस्था से, सत्य कहाँ से आता है अस्तित्व से। अस्तित्व नित्य प्रभावी है, सह-अस्तित्व के ढंग से। मनुष्य को छोड़कर शेष तीनों अवस्थाओं के संपूर्ण वैभव व्यवस्था में ही हैं।

मनुष्य में भी 'व्यवस्था' में होने की तरस किसी न किसी अंश में निहित ही है। भ्रमित (प्रचलित) पाठ्यपुस्तकों के पढ़ने से व्यवस्था का बोध होता नहीं है। व्यवस्था के बोध के बाद व्यवस्था में जीने के साथ ही मानव, धर्म को निभाने में योग्य हो जाता है। मानव धर्म 'व्यवस्था' में जीना ही है। अस्तित्व में हर वस्तु का व्यवस्था में रहना व्यवस्था में भागीदारी करना ही, धर्म के रूप में दिखता है। पदार्थावस्था का धर्म अस्तित्व (होना) है। प्राणावस्था का धर्म पुष्टि सहित अस्तित्व है। जीवावस्था का धर्म, जीने की आशा, पुष्टि सहित अस्तित्व के रूप में प्रकाशित है। ज्ञानावस्था (मानव) का धर्म निरंतर, अस्तित्व, पुष्टि, आशा सहित सुखधर्मी होना देखा गया है। सुख ही मानव धर्म है। सुख कैसे होगा? समाधान से। समाधान आयेगा व्यवस्था में जीने से। व्यवस्था में जीना मानव की समझदारी पर निर्भर करता है और समझदारी कुल मिलाकर अस्तित्व, जीवन और मानवीयता पूर्ण आचरण के बोध होने को कहते हैं।

व्यवस्था का बोध होने के बाद व्यवस्था में निष्ठा, संकल्प होना स्वाभाविक है। निष्ठा, संकल्प होने के उपरांत मानव व्यवस्था में जीता है इस प्रकार जीकर हम अच्छी परिस्थिति को निर्मित कर सकते हैं।

स्वयं को समझने के लिए न्याय, धर्म, सत्य को सटीक समझना होगा। न्याय कहाँ से समझ में आता है संबंध के आधार पर, धर्म कहाँ से आता है व्यवस्था से, सत्य कहाँ से आता है अस्तित्व से। अस्तित्व नित्य प्रभावी है, सह-अस्तित्व के ढंग से।

अतः मानवीय शिक्षा विधि को अपनाना होगा फलस्वरूप सद्बुद्धि उदय होगी । इसके बिना कोई उपाय है नहीं, जो इस धरती को सर्वनाश से बचा सके । इस बात को हमको समझना चाहिए । इसकी जरूरत हैं । नहीं समझने से परिस्थिति बाध्य करेगी समझने के लिए ।

इस तरह धर्म में जीना अर्थात् सार्वभौम व्यवस्था में जीना, अखंड समाज में जीना है । इस विधि से मानव की अखंडता को मैंने देखा है । **मानव जाति एक, कर्म अनेक; मानव धर्म एक ।** मानव अनेक प्रकार के कर्म कर सकता है सुखी रहने के लिए । अनेक कर्म का मतलब है अलग-अलग कार्य जैसे कपड़े का काम, मिट्टी का काम, फसल का काम आदि । जब तक मनुष्य, मानव को एक जाति के रूप में पहचानेगा नहीं तब तक मानव के साथ शुभ कार्य किया भी कैसे जा सकता है । मनुष्य के लिए यह स्वाभाविक है कि वह अनेक कार्य करेगा । अनेक कार्य का मतलब उत्पादन कार्य से है । मानव जाति एक होना हम इस तरह स्वीकार करते हैं कि मानव का उद्देश्य एक ही है, वह है सुखी होना । समृद्ध होना, समाधानित होना, अभय होना और निरंतर प्रमाणित करना सह-अस्तित्व को । इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए जो कार्यक्रम बनाते हैं उसका आधार “मानव जाति, मानव धर्म एक” पर ही बनता है । सुखी होने का रास्ता जो है उसी का नाम है धर्म (व्यवस्था) । एक देश काल में समझदार होकर व्यवस्था को प्रमाणित कर पाते हैं तो इसे हर देश काल में प्रमाणित कर सकते हैं यही इस प्रस्ताव की खूबी है ।

इस तरह धर्म में जीना अर्थात् सार्वभौम व्यवस्था में जीना, अखंड समाज में जीना है । इस विधि से मानव की अखंडता को मैंने देखा है । **मानव जाति एक, कर्म अनेक; मानव धर्म एक ।** मानव अनेक प्रकार के कर्म कर सकता है सुखी रहने के लिए ।

जय हो, मंगल हो ।